Approved as Supplementary Reader for Class VIII in U. P.





गंगा-पुस्तकमाला का ७७वाँ पुष्प

# सौ अजान और एक सुजान



[ एक प्रबंध-कल्पना ]

स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट

# हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास और कहानियाँ

| | | | |
|---|---|---|---|
| बिराटा की पद्मिनी | ६) | रेशमी | २।) |
| रंगभूमि ( दो भाग ) | १२) | अप्सरा | ४) |
| बहता हुआ फूल | ७) | अमिताभ | ५॥) |
| हृदय की परख | ३) | अलका | ३॥) |
| हृदय की प्यास | ४।) | अरक्षिता | २॥) |
| नूरजहाँ | ४।) | उल्टा मार्ग | ३) |
| पतन | ४) | कंट्रोल | २) |
| विदा | ६) | कुंडली-चक्र | ४) |
| विक्रमादित्य | ५) | क़ैदी | २।) |
| नंदन-निकुंज | ३) | चंद्रगुप्त मौर्य | ३॥) |
| प्रेम-प्रसून | ३॥) | चंद्रगुप्त विक्रमादित्य | ५) |
| मा | ६) | जागरण | ५) |
| केन | १॥), २) | नंगे पाँव | २॥) |
| बेगमों के आँसू | ३।) | नवाब लटकन | २) |
| विचित्र योगी | २॥) | विजया | ४) |
| विजय | ८) | अँधेरी रात | १॥) |
| अद्भुत आलाप | २।) | सोमनाथ | २॥) |
| बाहर-भीतर | २) | कवि और क्रांतिकारी | २।) |
| नादिरा | ५) | ज़िंदगी के मोड़ | ३) |

भारत-भर की भारती-भाषा ( हिंदी ) की पुस्तकें मिलने का पता—

**गंगा-ग्रंथागार, ३६, गौतम बुद्ध-मार्ग, लखनऊ**

गंगा-पुस्तकमाला का ७७वाँ पुष्प

# सौ अजान और एक सुजान

[ एक प्रबंध-कल्पना ]

लेखक
स्वर्गवासी पं० बालकृष्ण भट्ट

रे जीव सत्सङ्गमवाप्नुहि त्वमसत्प्रसङ्ग त्वरया विहाय ;
धन्योऽपि निन्दां लभते कुसङ्गात्सिन्दूरविन्दुर्विधवाललाटे ।

——:०:——

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, गौतम बुद्ध-मार्ग
लखनऊ

चौदहवीं बार ] सं० २०१३ वि० [ मूल्य १।)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ


**अन्य प्राप्ति-स्थान—**

१. भारती (भाषा)-भवन, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
३. सुधा-प्रकाशन, भारत-आश्रम, राजा बाज़ार, लखनऊ
४. वेस्टर्न बुकडिपो, रेज़िडेंसी रोड, नागपुर—१
५. गंगा-गृह, फूल-निवास, अजमेर
६. सावित्री-साहित्य-सदन, मच्छोदरी-पार्क, वाराणसी

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें।



मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

# भूमिका

( छठे संस्करण पर )

स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट वर्तमान युग की हिंदी के जन्मदाताओं में से एक समझे जाते हैं, और भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के समकालीन साहित्यकारों में उनका ऊँचा स्थान है। भट्टजी के पूर्व पुरुष मालवा-देश के निवासी थे, किंतु कारण-वश वे बेतवा के तट पर जटकरी-नामक ग्राम में आ बसे। पं० बालकृष्ण भट्ट का जन्म संवत् १९०१ में हुआ था। इनकी माता बड़ी पढ़ी-लिखी और साहित्यानुरागिणी थीं। इसलिये भट्टजी की शिक्षा-दीक्षा का प्रारंभिक रूप ही सुंदर बन गया, और थोड़े समय में ही उन्हें पर्याप्त विद्या-ज्ञान की प्राप्ति हुई। कुछ बड़े होने पर भट्टजी के पिता ने यह चाहा कि उनकी रुचि व्यवसाय की ओर आकर्षित की जाय, परंतु ऐसा न हो सका। हमारे चरित-नायक विद्याध्ययन की ओर से अपना ध्यान न हटा सके, फिर माता का आदेश भी उनके अनुकूल था। इस प्रकार १५-१६ वर्ष की आयु तक भट्टज़ी संस्कृत और हिंदी की शिक्षा प्राप्त करते रहे।

सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह के पश्चात् भारतवर्ष में क्रमशः अँगरेज़ी-भाषा का प्रचार बढ़ने लगा। माता की प्रेरणा से भट्टजी ने भी अँगरेजी पढ़ना शुरू किया, और एक मिशन स्कूल में एंट्रेंस-क्लास तक शिक्षा पाई। स्कूल के पादरी से कुछ धार्मिक विवाद हो जाने पर भट्टजी ने स्कूल को तिलांजलि दे दी, क्योंकि उनकी धार्मिक भावनाओं को आघात पहुँच चुका था, और वह पुनः संस्कृत का अध्ययन करने लगे। कुछ समय के लिये उन्होंने अध्यापन-कार्य भी किया, किंतु उसमें

विशेष रुचि न होने के कारण शीघ्र ही नौकरी छोड़ दी। स्वतंत्रता की धुन सवार होने के कारण यह बहुत दिनों तक घर बैठे रहे, और कहीं भी नौकरी न की।

इसी समय उनका विवाह हो गया। गृहस्थी की चिंता से त्रस्त होकर उन्होंने व्यापार करने की ठानी, किंतु उसमें भी सफलता न मिली। पुनः उन्होंने अपने अमूल्य समय को संकल्प-रूप में संस्कृत और हिंदी-साहित्य में लगाया, और उस समय के साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों में लेख लिखना प्रारंभ किया। प्रयाग के कुछ उत्साही साहित्यिकों के प्रयत्न से 'हिंदी-प्रदीप'-नामक पत्र निकालना शुरू हुआ, और हमारे भट्टजी ही उसके संपादक हुए। सरकार ने इसी अवसर पर प्रेस-ऐक्ट निकाला, जिसके प्रभाव से भट्टजी के सहयोगियों ने 'हिंदी-प्रदीप' से अपना संबंध-विच्छेद कर लिया। भट्टजी ने अनवरत परिश्रम करके पत्र को चालू रक्खा, और मातृभाषा की सेवा की भावना ने उनको आशातीत सफलता दी। कुछ समय उपरांत भट्टजी ने प्रयाग की कायस्थ-पाठशाला में संस्कृत के अध्यापन का कार्य आरंभ किया, किंतु यह नौकरी भी स्थायी न रही। इसके बाद ही 'हिंदी-प्रदीप' भी बंद हो गया। फिर काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी-शब्द-सागर'-नामक बृहत् कोष के संपादन में भट्टजी ने यथेष्ट सहयोग दिया, और उसे पूर्ण उपयोगी बनाने में पर्याप्त परिश्रम किया।

अचानक ही श्रावण-कृष्णा १३, संवत् १९७१ को आपका शरीरांत हो गया! हिंदी-माता के इस सपूत का निधन किस साहित्य सेवी को शोक-सागर में नहीं डुबोता? पं० बालकृष्ण भट्ट हिंदी के एक सच्चे सेवक और विद्वान् थे। उनका स्वभाव बड़ा ही सरल और उदार था। वह बड़े ही हँसमुख थे। उनकी रहन-सहन आडंबर-रहित थी। सनातनधर्म के पक्के अनुयायी होते हुए भी कभी अंध-परंपरा के पक्षपाती नहीं रहे। उनकी धर्म-निष्ठा सराहनीय थी।

भट्टजी के लिखे हुए कलिराज की सभा, बाल-विवाह-नाटक, नूतन ब्रह्मचारी, रेल का विकट खेल, जैसा काम वैसा परिणाम, भाग्य की परख, गीता-सप्तशती की आलोचना तथा षट्दर्शन-संग्रह का भाषानुवाद आदि-आदि बड़े ही महत्त्व-पूर्ण समझे जाते हैं। भट्टजी की भाषा उनकी अपनी भाषा है। उसमें मौलिकता है, रस है, और एक अनूठापन है, जो दूसरे लेखकों की रचनाओं में नहीं पाया जाता। उनकी कृतियों में अनुभव, अध्ययन और सरलता की छाप है। गद्य-लेखकों में भट्टजी ने अपनी असामान्य प्रतिभा द्वारा उच्च स्थान अधिकृत कर लिया है। भट्टजी द्वारा स्वसंपादित 'हिंदी-प्रदीप' में यदा-कदा प्रकाशित होनेवाले सुंदर लेखों का एक संग्रह 'साहित्य-सुमन' के नाम से, गंगा-पुस्तकमाला में प्रकाशित हो चुका है। उसमें एक-से-एक बढ़कर २५ चुने हुए ललित लेख हैं। कहना न होगा कि यह संग्रह इतनी लोक-प्रियता प्राप्त कर चुका है, जितनी आधुनिक समय में प्रकाशित विरले ही किसी संग्रह को मिली होगी।

'सौ अजान और एक सुजान' भी भट्टजी की अनूठी कृति है। इसीलिये इसके कई सस्करण हो चुके हैं। भट्टजी की यह रचना अपनी मौलिकता और उत्कृष्टता के कारण सर्वप्रिय बन चुकी है। एक प्रबंध-कल्पना के रूप में यह कृति अपने विषय की बेजोड़ चीज़ है। भाषा में हास्यरस की सुंदर पुट है। भाव स्पष्ट और गंभीर है। भट्टजी की यह रचना व्यंग्यात्मक है, और इसमें मानव-जीवन की सामाजिक परिस्थितियों का सुंदर चित्रण पाया जाता है। शृंखलित कथानक का आश्रय लेकर लेखक ने इस पुस्तक के विषय को और भी रोचक और सर्वग्राही बना दिया है। उसकी शैली का अनोखापन सहज ही पाठकों को मुग्ध कर लेता है। भट्टजी की प्रस्तुत रचना का आधार और मूल-तत्त्व उपदेश की भावना और अनुभवी जीवन के परिणामों का दिग्दर्शन-मात्र ही नहीं है।

इस संस्करण में संस्कृत-पद्यों का अर्थ फ़ुटनोट में दे दिया गया है। आशा है, इस बार हिंदी-संसार इसे और भी अधिक अपनाएगा, और हिंदी-साहित्य की एक स्मरणीय आत्मा के स्वर्गीय संदेश का साहित्य-जगत् में पर्याप्त प्रचार करने में हमारी सहायता करेगा। इसे आठवें दर्जे में नियत कर देने के लिये यू० पी० की टेक्स्टबुक-कमेटी के हम आभारी हैं। पहले हिंदी-साहित्य-सम्मेलन भी इसे पाठ्य पुस्तक नियत किए हुए था। आशा है, इस सुंदर संस्करण को वह फिर अपनाएगा।

कवि-कुटीर, लखनऊ<br>१७।६।३५ — दुलारेलाल

---

## वक्तव्य

हर्ष की बात है, हम इस पुस्तक के इतने अधिक संस्करण निकाल सकें। इससे मालूम होता है, भारतवासी नर-नारी अपनी राष्ट्र-भाषा को अपनाते जा रहे हैं। पर यू० पी० के शिक्षा-विभाग के और हाई स्कूलों के हिंदी-अध्यापकों के भी, जिन्होंने क्रमशः इसे गत १२ वर्षों में पाठ्य पुस्तक नियत कर और पढ़ाकर भट्टजी के प्रति आदर प्रकट किया है, हम आभारी हैं। उन्हीं की कृपा से आज इस पुस्तक का दशम संस्करण निकल रहा है। वे लोग चाहें, तो हिंदी-साहित्य का द्रुत गति से विकास हो सकता है। उन्हें चाहिए, हमसे हिंदी की पुष्टि-प्रगति और प्रचार-प्रसार की योजना मँगा लें, और हिंदी-सेवा का पुण्य लूटें।

कवि-कुटीर, लखनऊ<br>११ जुलाई, १९४८ — दुलारेलाल

---

## पहला प्रस्ताव

खोटे को सँग साथ, हे मन, तजो अँगार ज्यों ;
तातो जारै हाथ, सीतल हू कारो करै।

बरसात का अंत है। दुर्व्यसनी के धन-समान मेघ आकाश में सिमिट-सिमिट लोप होने लगे हैं। शरत् का आरंभ हो गया। शीत अपना सामान धीरे-धीरे इकट्ठा करने लगी। कुँआर का महीना है। उजाली रात है। ग्यारह बजे का समय है। संन्नाटा छाया हुआ है, मानो प्रकृतिदेवी दिन-भर की दौड़-धूप के उपरांत थकी-थकाई विश्राम के लिये छुट्टी लिया चाहती है। चंद्रमा सोलहो कला से पूर्ण होने में कुछ ऐसा ही नाम-मात्र का अंतर रखता हुआ अपनी प्रेयसी निशा की मुखच्छवि पर निहाल हो मानो हँस-सा रहा है, जिसकी सब ओर छिटकी हुई चाँदनी सम-विषम भू-भाग को एक आकार दरसाती हुई चक्रवर्ती राजा की आज्ञा-समान सर्वत्र व्याप रही है ; मानो वितान-रूप नीले आकाश-शामियाने के नीचे सफ़ेद फ़र्श बिछा दिया गया हो। मालूम होता है, शरत् की सहायता पाय धरती आकाश के साथ होड़ लगाए हुए है। वहाँ निर्मल आकाश में मोती-से चमकते हुए

तारे अपने स्वामी निशानाथ के प्रसन्न करने को निशा-वधूटी के लिये उपहार बन रहे हैं, यहाँ कन्या के सूर्य के प्रचंड आतप में कीचड़-पानी सूख जाने से स्वच्छ हो, छिटकी हुई चाँदनी के मिस हँसती-सी धरती फूले हुए कल्हार, गुलनार, कुँई, कुंद आदि भाँति-भाँति के फूलों का गहना सजे, उसी निशा नई दुलहिन को मुँह-देखाई देने को प्रस्तुत है। ऐसे समय अरबी घोड़े पर सवार एक आदमी देख पड़ा ; भेष इसका सिपाहियाना था ; उमर में यद्यपि ५० के ऊपर डाँक गया था, पर डीलडौल से ४० के भीतर मालूम होता था। बाल इसके दो-एक कहीं-कहीं पर पक गए थे सही, किंतु उतने से यह किसी को नहीं बोध होता था कि यह तरुनाई से ढुलक चला है। नई उमर का जोश, साहस, हिम्मत और दिलेरी में यह चढ़ती उमरवाले जवानों के भी आगे बढ़ा था, और ये ही सब बातें मानो साखी भर रही थीं कि कचलपटी और छिछोरपन से यह कहाँ तक दूर हटा हुआ है। पढ़ा-लिखा यह कुछ न था, पर जैसी कुछ मुस्तैदी इसमें देखी जाती थी, उससे स्वामिभक्ति इसके चेहरे से झलक रही थी। चौड़ी छाती और बदन की मज़बूती से क्षत्रिय मालूम होता था, और डील का न बहुत नाटा था, न बहुत लंबा। कुछ ऊँघता अलसाना-सा काग़ज़ का एक पुलिंदा हाथ में लिए लंबे-चौड़े पक्के मकान के फाटक पर आकर यह खटखटाने लगा। दासी ने आय किवाड़ खोल कहा—"बाबू सोवत हैं।" इसने कहा—"बड़ा ज़रूरी काग़ज़ है। सोकर उठें, तो यह पुलिंदा उन्हें दे

देना।" पुलिंदा दासी के हाथ में पकड़ाय आप चल दिया। दासी ने किवाड़ बंद कर लिया, और भीतर चली गई।

---

## दूसरा प्रस्ताव

नर को अरु नल नीर की गति एकै करि जोय ;
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होय।

हिंदुस्थान में अवध का प्रांत भी सदा से प्रसिद्ध होता आया है। पृथ्वी का यह सम भू-भाग अनेक छोटी-बड़ी नदियों से सिंचा हुआ उपज और पैदावारी में और प्रांतों की अपेक्षा आगे बढ़ा हुआ है। यद्यपि बंगाल, विहार, तिरहुत आदि कई एक और सूबे भी जलप्राय देश होने से अधिक उपजाऊ हैं, किंतु वैसे पुष्ट धान्य, जैसे अवध में उपजते हैं, और प्रांतों में कहाँ! उन-उन प्रांतों की उपज शारदीय अर्थात् कुँआरी और अगहनी-मात्र है। धरती के अत्यंत निर्बल और अधिक जलमय होने से वासंती अर्थात् चैती फ़सल वहाँ बिलकुल या बहुत कम होती है, और अगहनी में भी ज्वार, बाजरा आदि कई एक प्रकार के अन्न की खेती का तो नाम भी नहीं है। और ठौर जब कि जेठ-बैसाख की तपन और लू में झुलसकर कहीं हरियाली का लेश भी नहीं रहने पाता, यहाँ तब भी हरित तृण-आच्छादित पृथ्वी मरकतमयी-सी प्रतीत होती है। अवध इक्ष्वाकु और रामचंद्र के समय से वीर बाँकुरे क्षत्रियों का उत्पत्ति-स्थान प्रसिद्ध है। सरकारी फ़ौज में अब भी बैसवारे के सिपाहियों का दर्जा अव्वल

समझा जाता है। पंजाब की लड़ाई में ज़र्रार सिक्खों के दाँत यदि किसी ने खट्टे किए, तो इन बैसवारेवालों ही ने। अस्तु, इस अवध के इलाक़े में पुण्यतोया सरिद्वरा गोमती के तट पर अनंतपुर नाम का एक पुराना क़स्बा है। यहाँ सेठों का एक पुराना घराना है, जो अपनी क़दामत का पता उस नगर की प्राचीनता के साथ-ही-साथ बराबर देता चला आता है। इस घराने के सेठ लोग पहले दिल्ली के बादशाहों के ख़ज़ानची बहुत दिनों तक रहे, किंतु इधर थोड़े दिनों से, समय के हेर-फेर से, यह ख़ानदान बिलकुल दब गया ; और अब सिवा क़िले-से बड़े भारी मकान के कोई निशान इस घराने के पुराने बड़प्पन का बाक़ी न रहा। किंतु इधर हाल में यह ख़ानदान फिर जुगजुगाने लगा, और सेठ हीराचंद, जिनसे मेरे इस कथानक का आरंभ है, बड़े प्रसिद्ध और भाग्यवान् पुरुष हुए, जिन्होंने अपने उद्यम और व्यापार से असंख्य धन-संपत्ति के सिवा बहुत-से गाँव-गिराँव और इलाक़े भी बढ़ाए। नसीबे का सिकंदर यह यहाँ तक था कि इसके भाग से मिट्टी छूते सोना होता था, जिस काम को अपने हाथ में लेता, उसे बिना छोर तक पहुँचाए अधूरा कभी नहीं छोड़ देता था। नीति भी है—

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ।*

---

* बार-बार विघ्न पड़ने पर भी जो कार्य को प्रारंभ करके उसे बीच ही में नहीं छोड़ देते, वे श्रेष्ठ पुरुष हैं।

अपने काम में भरपूर लाभ उठाते हुए इसके कृतकार्य होने का कारण भी यही था। स्वयं यह बड़ा विद्वान् न था, न क्रम-पूर्वक किसी ग्रंथ का अनुशीलन किए था; पर प्रत्येक विषय के पंडित और विद्वानों के सत्संग में बड़ी रुचि रखता था। इस कारण यह इतना बहुश्रुत हो गया था कि ऐसे-वैसे साधारण योग्यतावाले ग्रंथ-चुंबकों की इसके सामने मुँह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। पर इससे यह अपनी योग्यता के अभिमान से किसी का अपमान करता हो, सो नहीं। योग्यता के अनुसार साक्षर-मात्र का आदर और प्रतिष्ठा करता था। यहाँ तक कि कोई शिष्ट मनुष्य अपने द्वेष्यवर्ग का भी हो, तो वह रोगी को औषध के समान उसका महामान्य हो जाता था, और अपना निज बंधु भी अनपढ़ा और दुश्चरित हो, तो वह साँप से डसी उँगली-सा उसे प्यारा न होता था। वरन् वह ऐसे को त्याग देता था—

द्वेष्योऽपि सम्मतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम्;
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता।

उस समय ठौर-ठौर अवध में पाठशालाएँ ऐसों ही की दी हुई वृत्ति से चलती थीं। हमारे यहाँ पंडितों की छात्र-मंडली में उत्तरहा अब तक प्रसिद्ध हैं, विशेषकर यहाँ के वैयाकरण तो एक उदाहरण हो गए हैं। कहावत प्रचलित है—"नैन चैन की चंद्रिका रही जगत में छाय" इत्यादि। अपव्यय या फ़िज़ूल-ख़र्ची से इसे चिढ़ थी। कहा भी है—

इदमेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता ;
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः ।*

ऊपरी दिखाव और चटक-मटक से इसे अत्यंत घिन थी, ज़ाहिरदारी को यह दिल से नापसंद करता था। जिस किसी को आमद से ज़ियादह ख़र्च करते देखता, उसे यह निरा बेईमान और दिवालिया मानता था, और न कभी ऐसों का अपने किसी काम में विश्वास करता था।

इससे यह मत समझो कि यह महाटंच, वज्र सूम था। काम पड़ने पर यह बेदरेग़ लाखों लुटा देता था, और बेजा एक पैसा भी उठ गया हो, तो उसके लिये दिन-भर पछताता था। जैसा कहा है—

यः काकिणीमप्यपथप्रपन्नां समुद्धरेन्निष्कसहस्रतुल्याम् ;
कालेषु कोटिष्वपि मुक्तहस्तस्तं राजसिंहं न जहाति लक्ष्मीः । †

दिन-रात सदा एक ही काम में लगे रहना इसे बहुत बुरा लगता था। सबेरे से साँझ तक ख़ाली तेल और पानी से देह चिकनाते हुए फ़ैशन और नज़ाकत के पीछे ज़नख़ा बन केवल अपने आराम और भोग-विलास की फ़िक्र के सिवा और कुछ

---

* यही पंडिताई है, यही चतुराई है, यही परम धर्म है कि आमद से ज़्यादा ख़र्च न हो।

† जो कुराह में जाती हुई एक कौड़ी की बचत को भी हज़ार मुद्रा-समान समझता है, और उचित समय पर करोड़ों ख़र्च कर डालता है, उस राजसिंह को लक्ष्मी नहीं त्यागती।

न करना इसे बिलकुल नापसंद था, न हरदम ख़ाली सुमिरनी फेरना ही इसे भला लगता था, न यह आठों पहर अर्थ-पिशाच बन केवल रुपया-ही-रुपया अपने जीवन का सारांश मान बैठा था। वरन् समय से धर्म, अर्थ, काम, तीनों को पारी-पारी सेवता था। व्यासदेव के इस उपदेश को अपने लिये इसने शिक्षा-गुरु मान रक्खा था—

धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः ;
यस्त्वेकसेव्यः स नरो जघन्यः ।*

बुद्धिमान् और सभा-चतुर ऐसा था कि ज़रा-से इशारे में बात के मर्म को पकड़ लेता था। केवल एक ही में नितांत आसक्ति न रख धर्म, अर्थ, काम तीनों में एक-सी निपुणता रखने से कभी किसी चालाक के ज़ुल में यह नहीं आता था। संसार के सब काम करता था, पर जितेंद्रिय ऐसा था कि कच्ची तबियतवालों की भाँति लिप्त किसी में न होता था—

श्रुत्वा दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ;
यो न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः । †

व्यापार में इसकी बुद्धि की स्फूर्ति उस समय के रोज़गारियों

---

* धर्म, अर्थ और काम, इनका समान रूप से सेवन करना चाहिए। जो मनुष्य एक ही का सेवन करता है, वह निंद्य है।

† जो मनुष्य सुनकर, देखकर, छूकर, खाकर और सूँघकर न प्रसन्न होता है, न अप्रसन्न, उसे जितेंद्रिय जानना चाहिए।

में एक उदाहरण हो गई थी। नगर-नगर इसकी कोठी, आढ़त और दूकानें इतनी अधिक थीं कि उनका इंतज़ाम इसी की अथाह बुद्धि का काम था। धर्म में निष्ठा, ब्राह्मण में भक्ति, शक्ति रहते भी क्षमा इत्यादि ऐसे लोकोत्तर गुण इसमें थे कि उनकी उपमा किसी दूसरे पुरुष में ढूँढ़ने से भी मिलना दुर्घट है। अस्तु, लड़के इसके कई हुए, किंतु बहुत कुछ उपाय के उपरांत केवल एक ही जीता बचा। पिता के उसमें एक भी गुण न हुए। इसकी अत्यंत सिधाई और सादापन देख लोग इसे भोंदूदास कहते थे, पर नाम इसका रूपचंद था। आशा होती थी, कदाचित् अपनी उमर पर आने से रूपचंद भी पिता के समान गुणागार होते। किंतु ईश्वर का कर्तव्य कुछ कहा नहीं जा सकता। २५ वर्ष की थोड़ी ही उमर में दो पुत्र, एक कन्या छोड़ यह सुरधाम को सिधार गया। सेठ हीराचंद को यद्यपि इसका बड़ा सदमा पहुँचा, किंतु उस दुख को अपने धैर्यगुण से दबाय उन दो पौत्रों ही को निज पुत्र-समान पालन-पोषण करने और पढ़ाने-लिखाने लगा, और इतनी धन-संपत्ति पाकर जैसा विनीत भाव और नवंता अपने में थी, वैसी इन लड़कों में भी हो जाने का प्रयत्न करने लगा।

---

## तीसरा प्रस्ताव

गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते। *

उसी नगर में एक महापुरुष विद्वान् रहते थे। दूर-दूर देश के छात्र और विद्यार्थी इनके स्थान पर पढ़ने के लिये टिके रहते थे। नाम इनका शिरोमणि मिश्र था। गुण में भी यह वैसे ही विद्वन्मंडलीमंडन-शिरोमणि के समान थे। अध्यापकी के काम में दूर-दूर तक कालाक्षरी के नाम से प्रसिद्ध थे, अर्थात् काला अक्षर-मात्र शास्त्र का कैसा ही दुरूह और कठिन कोई ग्रंथ होता, उसे यह पढ़ा देते थे। अनुपपन्न, ग़रीब विद्यार्थियों को, जिन्हें यह परिश्रमी, पर सर्वथा असमर्थ देखते थे, यथाशक्ति उनके गुज़रान के लायक़ छात्र-वृत्ति भी देते थे। सेठजी इनको बहुत मानते थे, इसलिये कितनों को तो शिरोमणिजी अपने पास से देते थे, और कितनों को सेठ से दिलाते थे। सेठ इनका बड़ा भक्त था, और इन्हें मूर्तिमान् प्रत्यक्ष देवता समझ एक बार दिन-रात-भर में इनका दर्शन अवश्य आय कर जाता था। मिश्रजी जैसे श्रोताध्ययन-संपन्न थे, वैसे ही सद्वृत्ति और सदाचारवान् भी थे। "न केवलया विद्यया तपसा वापि पात्रता", सो इनमें न केवल विद्या ही, वरन् तपस्या भी पूरी थी। स्वभाव के अत्यंत गंभीर और देखने में साक्षात् गणेश की मूर्ति मालूम होते थे। इनका चौड़ा लिलार और दमकती हुई मुख की द्युति

---

* गुणों की सब जगह क़दर होती है।

दामिनी की दमक के समान देखनेवाले के नेत्र को मानो चकाचौंधी-सी उपजाती थी। इनकी सत्पात्रता का कहना ही क्या। याज्ञवल्क्य लिखते हैं—

कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं विद्याभ्यासेन जीर्यति ;
कुलान्युद्धरते तस्य दश पूर्वाणि दशापराणि।*

सो अध्यापकी में तो यह यहाँ तक परिश्रम करते थे कि चार बजे तड़के से आठ बजे रात तक निरंतर पढ़ाया करते। केवल मध्याह्न में तीन-चार घंटे विश्राम लेते थे। सवेरे से दस बजे तक भाष्य, वेदांत, पातंजल आदि आर्ष ग्रंथों का पाठ होता था, और दूसरी जून काव्य, कोष, व्याकरण, गणित, ज्योतिष इत्यादि का। सिवा इसके जिस जून जो कोई कुछ पढ़ने आता था, वह उसे विमुख नहीं फेरते थे। किंतु केवल इतना विचार अवश्य रहता था कि असत् शास्त्र या निरीश्वरवादवाले ग्रंथ, जैसे कपिल का दर्शन, पहली जून नहीं पढ़ाते थे। प्रातःकाल के समय जब त्रिपुंड्र और रुद्राक्ष धारण किए कोड़ियों विद्यार्थी अपना-अपना आसन बिछाय संथा लेने को इनकी गद्दी के चारों ओर घेरकर बैठ जाते थे, उस समय यह मालूम होता था, मानो ऋषि-मंडली के बीच पद्मासन पर ब्रह्मा विराजमान हों। उस समय देखनेवाले के चित्त में यही भासती थी कि धन्य

* जिसका खाया हुआ अन्न पढ़ने-पढ़ाने की मेहनत से पचता है, वह अपने अगले-पिछले दस-दस पुरखों को तार देता है।

है इन विद्यार्थियों को, जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण इनके दरस-परस से अपना जन्म सफल करते हैं। सरस्वती भी धन्य है, जो इनके मुख-कमल के संपर्क का सुखानुभव करती हुई ऐसे महात्मा के प्रसन्न, गंभीर और विमल मन-मानस में राजहंसी के समान वास करती है, जहाँ से काव्य, कोष, अलंकार, तर्क आदि अनेक विद्या निकल-निकल नदी के समान प्रवाह-रूप में बहती छात्र-मंडली का कायिक और मानसिक दोनो पाप धोए देती है। न केवल विद्या ही के कारण इनकी सब कोई प्रशंसा करते थे और इनके बड़े मातक्दि हो गए थे, वरन् अनेक असाधारण लोकोत्तर गुणों से भी। शांति और क्षमा के यह आधार थे; तृष्णालता-गहन-वन के काटने को मानो कुठार थे; अज्ञान-तिमिर के हटाने को सहस्रांशु थे; हठ और दुराग्रह आदि महाक्रूर ग्रह के अस्ताचल थे; उदार भाव के उदयगिरि थे; क्षमा और उपशम-महावृक्ष के मूल थे; धर्म की ध्वजा, सत्पथ के दिखानेवाले, शील के सागर, सौजन्य-सुमन के कुसुमाकर थे। किंबहुना, हीरा-चंद के तो पंडितजी सर्वस्व ही थे। उस प्रांत के छोटे-बड़े सभी ताल्लुक़ेदार इन्हें मानते थे, और प्रतिमास असंख्य धन इनकी भेंट भेज देते थे। पंडितजी उस धन में से केवल साधारण भोजन और मोटा-झोटा कपड़ा पहन लेने के सिवा सब-का-सब अपने पास पढ़नेवाले विद्यार्थियों की छात्र-वृत्ति में खर्च कर देते थे। लड़का-बाला इनके कोई न था; पर इस बात का इनको कुछ सोच न था, उन विद्यार्थियों ही को अपना पुत्र मानते थे। वरन्

पुत्र से अधिक प्रेम उनमें इनका था। उन सबों में दूर-देश का एक विद्यार्थी आकर थोड़े दिनों से यहाँ पढ़ने लगा था। यह किस नगर या ग्राम का रहनेवाला था, यह कुछ मालूम नहीं; पर बोली इसकी कुछ-कुछ मारवाड़ियों की-सी थी। जो हो, इसके शील-स्वभाव और बुद्धि की तीक्ष्णता से पंडितजी इस पर यहाँ तक रीझ गए कि इसे अपना पट्टशिष्य मानने लगे। और सब बातों में पंडितजी की अनुहार तो इसमें थी ही, किंतु बोलने में पटु और बर्बर होना, यह एक बात इसमें विशेष पाई गई। पंडितजी अध्यापक बहुत अच्छे थे, किंतु अत्यंत शांतशील होने के कारण शास्त्रार्थ करने में उतने प्रवीण न थे। इसमें दोनों बातें होने से गुरुजी भी इसका विशेष आदर करने लगे। सेठ हीराचंद जब पंडितजी के दर्शनों को आते थे, तो उसका वाक्पाटव और पैनी बुद्धि की तेजी देख प्रसन्न हो जाते थे। और इसके ये गुण हीराचंद के मन में जगह पाते गए। नाम इसका चंद्रशेखर था; किंतु पंडितजी का यह अत्यंत कृपापात्र था, इससे यह इसे चंदू कहते थे। सेठ अपने बालकों के लिये ऐसा एक आदमी खोज रहा था, जो उन्हें पढ़ावे तो थोड़ा, पर इधर-उधर की चतुराई की बातें उन्हें सुनावे बहुत। चंदू में यह गुण देख उसी को सेठ ने अपने दोनों पौत्रों के पढ़ाने के लिये नियत कर दिया।

---

## चौथा प्रस्ताव

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता ;
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।*

धनाधिप राजराज कुबेर का-सा असंख्य धन और देवराज इंद्र के-से अनुपम ऐश्वर्य के स्वतंत्र अधिकारी अपने दो पौत्रों को छोड़ सेठ हीराचंद सुरधाम सिधार गए। सेठ के प्राण-धन-समान प्यारे पंडित-शिरोमणि ने भी इनके वियोग की आग के दाह में आह भरते हुए अपने जीवन को झुलसाना अनुचित मान और सेठ-सरीखे धर्मात्मा को वहाँ भी धर्मोपदेश से सनाथ रखने को इनका साथ दे दिया। 'राजा' और 'बहादुर' का-सा सिर्फ़ दुलार में पुकारने का नहीं, वरन् वास्तव में अपनी वेइंतिहा विभव की निश्चय दिलानेवाली दुहरी मुहर के समान अपने दो पौत्रों का नाम सेठ ने ऋद्धिनाथ और निधिनाथ रक्खा था। इनमें ऋद्धिनाथ बड़ा था और निधिनाथ छोटा। करोड़ों का धन अपने अधिकार में पाय अब इन दोनो के नाम की पूरी-पूरी सार्थकता हो गई। शील-स्वभाव और आकृति में दोनो की ऐसी समता पाई जाती थी, मानो वे हीराचंद के सुकृति-सागर की सीप के एक-सी आभावाले छोटे-बड़े दो मोती हैं, या उसके पुण्य की दो पताकाएँ हैं, या वंश-वृद्धि करनेवाले बीजांकुर

---

* जवानी, धन दौलत, प्रभुताई और अज्ञानता, इनमें से एक-एक अनर्थ के करनेवाले होते हैं, फिर जहाँ ये चारों इकट्ठे हो जायँ, तो उसका क्या कहना।

न्याय के दो उदाहरण हैं, या एक ही डठल के दो गुलाब हैं, या वसंत-ऋतु के चैत्र-वैशाख दो महीने हैं। साँचे के-से ढले इन दोनो के एक-एक अंग और रंग-रूप में यहाँ तक तुलना थी कि दाहने गाल पर एक तिल-जैसा बड़े के था, ठीक वैसा ही एक तिल छोटे के गोल कपोल पर भी, चंद्रमा के गोलाकार-मंडल में अंक के समान, शोभा दे रहा था। सामुद्रिक शास्त्र में लिखे हुए इनके अंग-प्रत्यंग में ऐसे-ऐसे एक-से लक्षणों को देख बोध होता था, मानो ये दोनो जब गर्भ में थे, तभी इनका शुभ-अशुभ भावी परिणाम नियत कर विधना ने इन्हें पैदा किया था। न केवल इन दोनों के शरीर की सुघराहट और बनावट ही में समता थी, वरन् शील-स्वभाव, रंग-ढंग, बोल-चाल, रहन सहन, सब इन दोनो का एक-सा था। उमर इस समय बड़े की चौदह और छोटे की बारह वर्ष की थी। कुछ दिनों तक ये दोनो बराबर उसी क्रम पर चले गए, जिस क्रम पर सेठ इन्हें रख गया था। चंदू नित्य इनके घर पढ़ाने आता। कभी-कभी दोनो ही उसके घर जाते थे। चंदू इन्हें पढ़ाता तो थोड़ा, पर इधर-उधर की चतुराई की बातें, जो इनकी कोमल बुद्धि में सहज में समा सकें और सोहावनी मालूम हों, बहुत सुनाया करता था। ये बड़े शांत और विनीत भाव से उसकी बातें सुनते और गुरु के समान उसका यथोचित आदर करते थे। चंदू की योग्यता और पांडित्य का प्रकाश हम पहले कर आए हैं कि यह पंडितजी का पट्टशिष्य था, और उनके पढ़ाए हुए विद्यार्थियों में सबसे

चढ़ा-बढ़ा था ; बल्कि शिरोमणि महाराज के सब उत्तम गुण इसमें देखे गए, अंतर केवल इतना ही पाया गया कि स्वभाव का यह अत्यंत तीक्ष्ण और क्रोधी था, लल्लोपत्तो और ज़ाहिरदारी इसे आती ही न थी, बल्कि ऐसे लोगों पर इसे जी से घिन थी। उन ब्राह्मण पंडितों में न था कि केवल दूसरों ही के उपदेश के लिये बहुत-से ग्रंथों का बोझ लादे हों, पर काम में पतित, महामंद शूद्र से भी अधिक गए-बीते हों। लोभ, कपट और अहंभाव का कहीं संपर्क भी इसमें न था। स्वलाभ-संतोष, सिधाई और जीव-मात्र की हितेच्छा की यह मूर्ति था।

विप्रान् स्वलाभसन्तुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् ;
निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत् ।*

मानो भगवत् के इस श्रीमुखवाक्य का आधार यह था। इसकी चरितार्थता ऐसे ही ब्राह्मणों के विद्यमान रहने से हो रही है। अफ़सोस ! यदि समस्त ब्रह्ममंडली या उनमें से अधिकांश चंदू के समान उन-उन सुलक्षणों से सुशोभित होते, तो इस नई रोशनी के ज़माने में भी इनके विरुद्ध मुँह खोलने को किसी की हिम्मत न पड़ सकती और न ये सर्वथा पतित हो

---

* ऐसे ब्राह्मण जो स्वलाभ-संतुष्ट, हैं, साधु हैं, प्राणिमात्र के हित चाहनेवाले हैं, अहंकार-रहित हैं, शांत स्वभाव के हैं, भगवान् कहते हैं, मैं उन्हें बार-बार सिर से प्रणाम करता हूँ।

ऐसी गिरी दशा में आ जाते। अस्तु, वे सब उत्तम गुण इसके लिये अवगुण हो गए। साथ के पढ़नेवाले ही इसके गुण-गौरव को न सह इसकी खुचुर में लग गए। यह किसे प्रकट नहीं है कि आपस की नाइत्तिफ़ाक़ी के बीच दूसरे की तरक़्क़ी पर जलने ने ही हिंदुस्थान को मुद्दत से कबाब कर रक्खा है। फिर जिस जाति का चंदू है, उसकी तो यह ख़ास ख़सूसियत-सी हो गई है। कहावत है "नाऊ, बाम्हन, हाऊ, जाति देखि गुर्राऊ।" "सिरे की भेड़ कानी" के भाँति ब्राह्मण ही, जो हिंदू-जाति का सिरा और हिंदुस्थान के सब कुछ हैं, इस लक्षण के हुए, तो औरों की कौन कहे। चंदू इस बात को जान गया था कि लोग हमसे खार खाते हैं, और हमारी खुचुर में लगे हुए हैं, फिर भी अपना कर्तव्य काम समझ उन दोनों बालकों को सिखाने और उन्हें ढंग पर चढ़ाने से यह विमुख न हुआ। इसने सोचा कि हीराचंद-सरीखे सत्पात्र के घराने की प्रतिष्ठा और भलमनसाहत इन्हीं दोनों के सुधरने या कुढंग होने से बनती या बिगड़ती है। दूसरे, सेठजी का एहसान इस पर इतना अधिक था कि उसे याद कर यद्यपि यह स्वभाव का बहुत सच्चा और खरा था, तो भी इस काम से अलग न हुआ।

अब वर्ष ही दो वर्ष के उपरांत तरुनाई की झलक इन दोनों पर आने लगी। नई-नई तरंगें सूझने लगीं; नई उमर का तक़ाज़ा शुरू हो गया; अमीरी के अलहड़पन ने आकर जब जगह की, तो उसी तरह के सब सामान इकट्ठे होने की

वृक्षिक हुई। एकाएक अज्ञान-तिमिर के छा आने पर चाँदनी-समान चंदू के उपदेश को प्रकाश पाने का अवसर ही न रहा। असंख्य धन और राजसी वैभव पर अपना स्वतंत्र अधिकार देख दोनों में एक साथ चढ़े हुए दर्पदाह ज्वर की दाह बुझाने को सदुपदेश शीतलोपचार इनके लिये किसी भाँति कारगर न हुआ। बबुआ से बाबू साहब बनने का शौक़ बढ़ा; जी में नई-नई उमंगों का समुद्र उमड़-उमड़ लहराने लगा। सेठ की दौलत पर गीध के समान ताक लगाए बैठे हुए मीरशिकार, भाँड़-भगतिए दूर-दूर से आ जमा होने लगे, ख़ुशामदी, चुटकी बजानेवाले मुफ़्तख़ोरों की बन पड़ी। चंदू की शिक्षा के अनुसार चलने की कौन कहे, उसके नाम की चर्चा भी चित्त में दोनों को बिच्छू के डंक की भाँति व्यथा उपजाने लगी। इनकी पसंद या तबियत के ख़िलाफ़ ज़रा-सा कोई कुछ कहता, तो वह इनका पूरा दुश्मन बन जाता था। चंदू जब इनकी कोई अनुचित बात देखता, उसी दम इन्हें टोक देता और आगे के लिये सावधान हो जाने को चिता देता था। यह इन दोनों को ज़हर लगता था, और जी से यही चाहते थे कि कौन-सा ऐसा शुभ दिन होगा कि इस खूसट से हमारा पिंड छूटेगा। जो अनंतपुर सेठजी-सरीखे विद्यारसिक भोजदेव के मानो नवावतार के समय दूर-दूर से झुंड-के-झुंड नित्य नए विद्वानों के आने-जाने से छोटी काशी का नमूना बना हुआ था, वही अब भाँड़-भगतिए, कत्थक कलावतों के भर जाने से लखनऊ और दिल्ली की अनुहार

करने लगा। हमारे बाबू साहब को इस बात का हौसला नित-नित बढ़ता ही गया कि जो अमीरी के ठाट-बाट हमारे यहाँ हों, वे अवध के बड़े-बड़े नौवाबज़ादे और ताल्लुक़ेदारों के यहाँ भी देखने में न आवें। बड़े बाबू का हौसला देख छोटे बाबू साहब क्यों पीछे हट सकते थे ? इस तरह दोनो मिल खेत सींचनेवाले दोगले की भाँति सेठ की चिरकाल की कमाई का संचित धन दोनो हाथों से उलच-उलच फेकने लगे। इस तरह वहाँ अजान लोगों का दल इकट्ठा होते देख और इन दोनो के कुढंग और कुचाल की बढ़ती देख चंदू-सा सुजान अचानक अंतर्द्धान हो गया। पर जी में इसके इस बात की चोट लगी रह गई कि हीराचंद-सरीखे सुकृती की संपत्ति का ऐसा बुरा परिणाम होना अत्यंत अनुचित है।

---

## पाँचवाँ प्रस्ताव

इक भीजैं, चहलैं परैं, बूड़ैं, बहैं हजार ;
किते न औगुन जग करै वै-नै चढ़ती बार।

शिशिर की दारुण शीत से जैसे सिकुड़े हुए देहधारियों के एक-एक अंग वसंत की सुखद ऊष्मा के संचार होते ही फैलने लगते हैं, उसी तरह कुसुमबाण की गरमी शरीर में पैठते ही नवयुवा और युवतियों के अंग-प्रत्यंग में सलोनापन भीजने लगता है। तन में, मन में, नैन में नई-नई उमंगें जगह

करती जाती हैं; एक अनिर्वचनीय शोभा का प्रसार होने लगता है। प्रिय पाठक, नई उमर की मनोहर पुष्पवाटिका की कुछ अकथ कहानी है, इसका ढंग ही कुछ निराला है। हमने वसंत की सुखद ऊष्मा के संचार की सूचना पहले आपको दे दी है। नई-नई कलियों को फूटकर विकास पाने का स्वच्छंद अवसर इसी समय मिलता है, अत्यंत कटीले और मुरझाए हुए पेड़, जिनकी ओर बाग़ का माली कभी झाँकता भी नहीं, एक साथ हरे-भरे हो लहलहा उठते हैं। तब उन नए पौधों का क्या कहना, जो नित्य दूध और दाख-रस से सींचकर बढ़ाए गए हैं। इस समय, जिसका हमारे यहाँ के कवियों ने वयस्संधि नाम रक्खा है, जिसके वर्णन में कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, मतिराम, बिहारी आदि अपनी-अपनी कविता का सर्वस्व लुटाए बैठे हैं, आज हम भी उसी के गुन-ऐगुन दिखाने के अवसर की प्रार्थना आपसे करते हैं। हमारे पाठकों में जो सब ओर से लहराते हुए सिंधु-समान इस चढ़ती उमर के उफान को, जिसे ऊपर के दोहे में कवि ने नै वै कहा है, खेकर पार हो गए हैं, और अब शांति धरे मननशील महामुनि बन बैठे हैं, वे जान सकते हैं कि यह चढ़ती जवानी क्या बला है, और कैसे-कैसे ढंग पर आदमियों को ढुलकाए फिरती है। यह नए-नए हौसलों की भूलभुलैया में छोड़ हज़ारों चक्कर दिलाती है, राग-सागर की तरंगों में तरेर फिर उभड़ने हो नहीं देती। हम ऊपर कह आए हैं कि इन दोनो बाबुओं में न केवल चढ़ती जवानी का जोश उफान दे रहा था, अपितु

धन, संपत्ति, प्रभुता और स्वतंत्रता का पूरा प्रादुर्भाव था, जिसके कारण तरल-तरंगिणी-तुल्य तारुण्य-कुतर्की ने अत्यंत सहायता पाय इन्हें चारो ओर से अपना तावेदार करने में लव-मात्र भी त्रुटि न की। धन-मद ने भी इस नए पाहुने नै बै की पहुनाई के लिये सब भाँति सन्नद्ध हो सत्संग की श्रद्धा को शिथिल कर डाला। अब इन कुचालियों को महात्मा हीराचंद की दिखाई हुई सुराह पर चलना महा जंजाल हो गया। इनके हृदय की आँखों में कुछ ऐसा अनोखा अंधकार छा गया कि राहु की छाया-समान उसका आभास इनके यावत् कामों में प्रसार पाने लगा। झूठी-झूठी बातों से मन को लुभानेवाले खुशामदी चापलूसों के ठट्ट-के-ठट्ट जमा हो इन्हें अपने ढंग पर उतार लाए। इन्हें इस बात का ज्ञान बिलकुल न रहा कि ये सब अपने मतलब के दोस्त हैं; काम पड़ने पर ये कोई हमारा साथ न देंगे। चिरकाल तक अभ्यसित चंदू के चोखे चुटीले उपदेशों की वासना भी न रही। नए-नए लोग जिनकी बड़े सेठजी के समय कभी सूरत भी न देख पड़ती थी, वे इनके दिली दोस्त हो गए। इनका रोब और दिमाग़ देख किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि इनसे इसके लिये कुछ मुँह पर लावे। पुराने बूढ़ों में से जिसने कभी कुछ कहने का साहस किया, वह इनका जानी दुश्मन बन गया। ऐसों का संग करना कैसा, बल्कि उनका नाम सुन चिढ़ उठते थे। ऐसे लोगों से दूर रहना ही इन्हें पसंद आता था। नाच-तमाशे, खेल-कूद, सवारी-शिकारी, पोशाक और घर की सजा-

वट की ओर अज़हद शौक़ बढ़ा। दोनों बाबू सदा इसी चेष्टा में रहते थे कि इन सब सजावटों में आस-पास के अमीर, ताल्लुक़ेदार और बाबुओं में कोई हमारे आगे न बढ़ने पावे, और इसी चढ़ा-उतरी में लाखों रुपया ठिकरी कर डाला। अपनी ख़ूबसूरती, अपनी पसंद, अपनी बात सबके ऊपर रहे। इनके कहने को ज़रा भी किसी ने दूखा कि त्योरी बदल जाती, मिज़ाज बरहम हो जाता था। दुर्व्यसन के विष का बीज बोनेवाले चापलूस चालाकों की बन पड़ी। एक चापलूस बोला—"बाबू साहब, आपके घराने का बड़ा नाम है ; आज दिन अवध के रईसों में आपका औवल दरजा है। बड़े सेठ साहब सीधे-सादे बनिया आदमी थे, इसलिये उनको वही सोहाता था। अब आपका नाम बड़े-बड़े ताल्लुक़ेदारों और रईसों में है। आपकी रब्त-ज़ब्त और इज़्ज़त बहुत बढ़ी है। नित्य का आना-जाना ठहरा, एक-एक तक़रीब, जल्से और दरबार हुआ ही करते हैं। तब आप वैसा सब सामान न कीजिएगा, तो किस तरह बाप-दादों की इज़्ज़त और अपने ख़ानदान की बुज़ुर्गी क़ायम रख सकिएगा ?" दूसरा बोला—"जो हाँ हुज़ूर, बहुत ठीक है। सामान तो सब तरह का इकट्ठा करना ही चाहिए।" तीसरा बोला—"इन सजावटों के लिये लाख-पचास हज़ार रुपए आपके लिये क्या हक़ीक़त हैं। मैं हाल में लखनऊ गया था, एस्० बी० कंपनी की दूकान पर शीशे-आलात वग़ैरह का नया चालान आया है। मैं समझता हूँ, आपके कमरों की सजावट के लिये पंद्रह-बीस हज़ार के शीशे

काफ़ी होंगे।" बाबू साहब इन धूर्तों की चापलूसी पर फूल उठते थे। जिसने जो कुछ कहा, तत्काल उसे मंज़ूर कर लेते थे। "आठ बार, नौ तेवहार" लगे ही रहते। दिन बाग़-बग़ीचों की सैर, यार-दोस्तों के मेल-मुलाक़ात में बीतता था; रात नाच-रंग और ज़ियाफ़तों की धूमधाम में कटने लगी। दिल्ली, आगरा, बनारस, पटना आदि के नामी तायफ़े सदा के लिये अनंतपुर में बुलाकर टिका लिए गए। अपने घर का सब काम-काज देखना-भालना तो बहुत दूर रहा, बड़े बाबू साहब को हुंडी-पुरज़ों पर दस्तख़त करना भी निहायत नागवार होता था। मुनीम और गुमाश्तों की बन पड़ी। सब लोग अपना-अपना घर भरने लगे। इधर ये दोनो हाथों से दौलत को उलच-उलच फेंकते थे, उधर मुनीम, गुमाश्ते तथा और कार्यकर्ता, जिनके भरोसे इन दोनो ने सब काम छोड़ रक्खा था, अपना घर भरने लगे। इसी दशा में हीराचंद के सुकृत धन का हाल सौ जगह से रसते हुए घड़े का-सा हो गया, जो देखने में कुछ नहीं मालूम होता, किंतु थोड़े ही अरसे में घड़ा छूछे-का-छूछा रह जाता है। सच है—

समायाति यदा लक्ष्मीर्नारिकेलफलाम्बुवत्;
विनिर्याति यदा लक्ष्मीर्गजभुक्तकपित्थवत्।*

---

* लक्ष्मी जब आने लगती है, तो नारियल के फल में पानी के समान आती है। भीतर पानी इकट्ठा रहता है, बाहर किसी को नहीं पता लगता। वही जब जाती है, तो हाथी के खाए कैथे के समान

## छठा प्रस्ताव

### किमकार्यं कदर्याणाम् *

ग्रीष्म की ऋतु है। जेठ का महीना है। दोपहर का समय है। सब ओर सन्नाटा छा रहा है। तिग्मांशु की तीखी खरतर किरणों से समस्त ब्रह्मांड तचे लोह-पिंड का अनुहार कर रहा है। क्या स्थावर, क्या जंगम, यावत् पदार्थ सब पानी-ही-पानी रट रहे हैं। जिसे छुआ, वही अंगारे-सा गरम बोध होता है, मानो त्वगिंद्रिय शीत-स्पर्श से निराश हो जल में शैत्य गुण का निर्देश करनेवाले (शीतस्पर्शवत्यापः) कणाद महामुनि की बुद्धि का भ्रम मान बैठी है। एक तो अत्यंत दंड़ायमान दिन, उसमें ललाटंतप चंडांशु के प्रचंड आतप के ताप से संतप्त, शीतलच्छाया का सहारा लिए, यह जंगम जगत् भी स्थिर भाव धारण कर, मौन अवस्था में, दुःखदायी ग्रीष्म के उच्चाटन का, मानो मंत्र-सा जप रहा है। जंगम जगत् की इस मौन दशा में कभी-कभी पुराने खँडहरों पर बैठी चील का भयंकर किकियाना जो कानों को व्यथा पहुँचा रहा है, सो मानो बीच-बीच उस उच्चाटन-मंत्र की सुमिरनी पूरी होने का पता देता है। प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ घर-

---

होती है। कैथा समूचा हाथी लीद कर देता है। पर भीतर का गूदा ग़ायब रहता है।

* दुष्ट तथा नीच के लिये कोई ऐसा बुरा काम नहीं है, जिसे वे न कर सकें।

घर सब लोग भोजन के उपरांत विश्राम-सुख का अनुभव कर रहे हैं, नींद आ जाने पर पंखा हाथ से छुट गया है, खुर्राटे भरने लगे हैं। स्त्रियाँ गृहस्थी के काम-काज से छुटकारा पाय दुधमुँहे बालकों को खेला रही हैं। कोई-कोई बालक-बालिकाओं को इकट्ठे कर उनके रिझाने की कहानियाँ कह रही हैं। कोई-कोई रूपगर्विता बार-बार दर्पण में मुख देख-देख वेश-भूषा की सजावट कर रही हैं। कोई-कोई बड़ी जंगरैतिन गृहस्थी का सब काम शेष होते देख जेठ के दीर्घ दोपहर की ऊब दूर करने को सूप की फटकार से अपने परोसी के विश्राम में विक्षेप डाल रही हैं। हवा के साथ लड़नेवाली कोई कर्कशा न लड़ेगी, तो खाया हुआ अन्न कैसे पचेगा, यह सोच अपने परोसियों पर बाण-से तीखे और रूखे वचन की वर्षा कर रही है। कोई सरला सुशीला घर की पुरखिन अपनी बहू-बेटियों को एकत्र कर उन्हें अच्छे-अच्छे उपदेश दे रही है। कोई पढ़ी-लिखी एकांत में बैठी तुलसी-कृत रामायण या सूर के पदों का अभ्यास कर रही है। कोई कोमलांगी अपनी यारी सखी को क़सीदा या कारपेट सिखाती हुई परस्पर प्रेमालाप के द्वारा मध्याह्न के निकम्मे घंटों को सफल कर रही है। खेलवाड़ी बालक, जिन्हें इस दोपहर में भी खेलने से विश्राम नहीं है, गप्पें हाँकते हुए दूसरे-दूसरे खेल का बंदोबस्त कर रहे हैं। बँगलों पर साहब लोगों के पदाघात का रसिक पंखा-कुली अपने प्रभु के पाद-पद्म को मानो बारंबार झुक-झुक प्रणाम करता-सा ऊँघ रहा है, पर पंखे की डोरी हाथ से नहीं

छोड़ता। सहिष्णुता और स्वामिभक्ति में दृढ़ सौहार्द इसी का नाम है।

अस्तु, ऐसे समय रंगीन कपड़ा सिर पर डाले अठखेली चाल से एक नौजवान आता हुआ दूर से देख पड़ा। धीमे स्वर से कुछ गाता हुआ चला आ रहा था। ज्यों-ज्यों पास आता गया, इसकी पूरी-पूरी पहचान होती गई। पहले इसके कि हम इसका कुछ परिचय आपको दें, यह निश्चय जान रखिए कि चंदू-सरीखे बुद्धिमानों के सदुपदेश के अंकुर का बीजमार करनेवाला अकालजलदोदय के समान यही मनुष्य था। यद्यपि अनंतपुर में सेठ के घराने से इस कदर्य का पुराना संबंध था, किंतु सेठ हीराचंद के जीते-जी इसका केवल आना-जाना-मात्र था। इसके घिनौने काम और दुराचार से हीराचंद सदा घिन रखते थे। इस कारण जब-तब इसे ऐसी फटकार बतलाते थे कि सेठ के घराने से अत्यंत घिष्ट-पिष्ट रखने की इसकी हिम्मत न होती थी। पाठकजन, यह सेठजी के पूज्य पुरोहित के घराने का था। नाम इसका बसंतराम था, पर सब लोग इसे बसंता-बसंता कहा करते थे। नाक फसड़ी, होठ मोटे, आँखें घुच्चू-सी, माथा बीच में गड्ढेदार, चेहरा गोल, रंग काला, मानो अंजन-गिरि का एक टुकड़ा हो। पढ़ना-लिखना तो इसके लिये "काला अक्षर भैंस बराबर" था। जब यह मा के गर्भ में था, तभी इसके बाप ने यमपुर की राह ली। केवल नाम-मात्र के ब्राह्मण इन पुरोहितों की पहले तो सृष्टि ही निराली होती है कि पुरोहिती कर्म से

जीनेवाले सौ-पचास इकट्ठे किए जायँ, तो विरले एक-दो उनमें ऐसे निकलेंगे, जो आवारगी, उजड्डपन और छिछोरेपन से खाली होंगे। विद्या, गुण अथवा किसी प्रकार की योग्यता का तो जिक्र ही क्या, उनमें साधारण रीति की मनुष्यता ही हो, तो मानो बड़ी कुशल है। तब इस रंडा-पुत्र का कहना ही क्या! इस अभागे को तो जन्म ही से कोई कुछ कहने-सुननेवाला न था।

एकेनापि सुदीप्तेन कोटरस्थेन वह्निना ;
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा। *

कुपुत्रों में भी यह उस तरह का कुपूत न था कि खोड़र में रक्खी आग के समान केवल अपने ही कुल को भस्म करे, अपिच जहाँ-जहाँ इसकी थोड़ी भी पैठ या संचार हो गया, वहाँ-वहाँ इसने भरपूर अपना-सा उस घरानेवालों को कर दिखाया। यह सदा इसी ताक में रहा करता था कि किस घराने में कौन-कौन नए केड़े हैं। उन्हें किसी-न-किसी तरह अपने ढंग पर चढ़ाय खातिरखाह गुलछर्रे उड़ाया करता। जब देखा, अब यहाँ कुछ सार न रहा, तो निर्गंधोज्झित पुष्प के समान उसे त्याग भ्रमर के समान दूसरा ठौर ढूँढ़ने लगता। इस क्रम से इसने न जानिए कितने कुलप्रसूत नई उमरवालों का शिकार कर अमीर शिकारी के फ़न में पूरा उस्ताद हो रहा

* किसी एक खोड़र में रक्खी हुई आग से जैसे कुल वन जल जाता है, वैसे कुल में कुपुत्र के उपजने पर समस्त वंश-का-वंश नष्ट हो जाता है।

था। उन बाबुओं को तो इसने ऐसा फँसा रक्खा था कि इसके बिना उन्हें एकदम चैन न पड़ती, मानो दोनो बाबुओं का यह बसंता सर्वस्व हो गया था। और, यह ऐसा चालाक था कि जिस ढंग पर चाहता, काठ के खेलौने के माफ़िक़ दोनो को ढुलकाता फिरता। हम पहले लिख आए हैं कि यह पढ़ा-लिखा न था, तब हबशियों के-से इसके मोटे-मोटे होठों पर बड़े-बड़े और चौड़े दाँतों को देख "क्वचिदन्ता भवेन्मूर्खः" सामुद्रिक के इस लक्षण में क्वचित् शब्द की चरितार्थता मानो इसी के लिये रक्खी गई थी; बड़े दाँतवाले कोई मूर्ख देखे गए, तो यही। दूसरे, इसकी कंजी आँखें साखी दे रही थीं कि कदर्यता इसमें किस दर्जे तक पहुँची हुई है। पाठक, आप बसंता से भरपूर परिचय कर रखिए, अभी आपको इससे बहुत काम पड़ना है, क्योंकि हमारे इस क़िस्से के कई एक नायक-प्रतिनायकों में चंदू का प्रतिनायक यही होता रहेगा। चंदू-सा सुपात्र, भलामानुस और बसंता के समान नट-खट कुपात्र कहीं विरले पाओगे। यों बाबू साहब बरायनाम काठ के उल्लू बनाकर थाप दिए गए थे, असल में मानो हीराचंद का बलीअहद यही बन बैठा था, और उनके धन का सब सुख भोगनेवाला यही अपने को मानता था। ऐसे दोपहर के समय यह क्यों घर से निकला, और क्या इसका मनसूबा था, इसका रहस्य जानने को कौन न उकताता होगा; किंतु सहसा किसी रहस्य का उद्घाटन उपन्यास-लेखकों की रीति के विरुद्ध है, इससे इस प्रस्ताव को यहीं समाप्त करते हैं।

---

## सातवाँ प्रस्ताव

सन्ततिः श्लाघ्यतामेति पितॄणां पुण्यकर्मभिः ।*

अनंतपुर से ईशानकोण के दो कोस पर एक मठ था। यह मठ किसी प्राचीन देवस्थान में हो, इसका कहीं से कुछ पता नहीं लगता; क्योंकि किसी पुराने लेख, इतिहास या पुराण में इसकी कहीं चर्चा नहीं पाई गई। किंतु साथ ही इसके यह भी कोई नहीं जानता कि कब से इस मठ की पूजा और मान आरंभ किया गया; न यही कोई बता सकता है कि किस बड़े सिद्ध या महात्मा का यह आश्रम या तपोभूमि है। इस मठ में किसी देवी-देवता की मूर्ति न थी; न इसके समीप आस-पास कोई कुंड, देवखात, नदी-झरने आदि थे, जिससे हम इसे कोई पुराना तीर्थ कह सकें। इस मठ का कुल हलका पौन कोस के गिर्द में था। चारो ओर से लहलहे, सघन वृक्षों की शीतलच्छाया और ठौर-ठौर लताओं से छाए हुए कुंजों की रमणीयता मन को हरे लेती थी। ग्रीष्म का संताप और जाड़े की कपकपी कभी वहाँ नाम को भी न व्यापती थी। बरसात के पानी का एक अच्छा लहरा घने वृक्षों की छाया में एक साधारण-सी बूँदाबाँदी मालूम होती थी। बोध होता है, मानो ये सब विटप और लताएँ वर्षा,

---

* बाप-दादों के पुण्य कर्म से संतान की उन्नति और प्रशंसा होती है।

वात, शीत, आतप के निवारक इस मठ के लिये एक क़ुदरती छाता बन गए हैं। हम ऊपर लिख आए हैं कि वहाँ कोई देव-मंदिर या किसी देवता की प्रतिमा स्थापित न थी, जिससे तीर्थ होने का कोई चिह्न वहाँ प्रकट होता हो; किंतु तपोभूमि-सदृश उस स्थान का माहात्म्य ऐसा देखा जाता था कि वहाँ पहुँचते ही मन में सतोगुण का भाव आप-से-आप उदय हो आता था। मन कैसा ही उदासीन और मलीन हो, वहाँ जाने से प्रसन्न और प्रफुल्लित हो उठता था। इस आश्रम का मुख्य स्थान कई एक पुराने-पुराने वट-वृक्षों के बीच एक मढ़ी-सी थी, जिसके भीतर गज़-भर का लंबा-चौड़ा और आधा गज़ ऊँचा एक पक्का चबूतरा-सा बना था। यात्री या ज़ियारत करनेवाले उसी चबूतरे की पान, फूल, मिठाई इत्यादि से पूजा करते थे। दस-बीस कोस के गिर्द में यह स्थान ऐसा प्रसिद्ध था कि दूर-दूर से लोग यहाँ मानमनौती करने आते थे। इस चबूतरे के एक ओर एक धूनी-सी थी, जिसमें रात-दिन गुग्गुल, लोबान और चंदन की लकड़ी सुलगा करती थी। लोग कहते हैं, यह अग्नि यहाँ द्वापर के अंत से आज तक नहीं बुझी, और अर्जुन ने जब खांडव वन जलाया था, तो उसकी परिशिष्ट अग्नि लाकर यहीं स्थापित कर दी, और प्रलय-काल में जब महादेवजी के तीसरे नेत्र से अग्नि निकलकर संपूर्ण विश्व को भस्मसात् करेगी, उसी में यह धूनी की

आग भी मिलकर शिव की नेत्राग्नि को दोचंद भड़का देगी। इस मठ के पंडे या पुजारी थोड़े-से जटाधारी काले-काले योगी या गोसाईं लोग थे। वे ही यहाँ प्रधान या मुखिया थे। जो कुछ इस मठ में चढ़ता था, वह सब इन्हीं लोगों में बँट जाता था। आवारगी, उजड्डपन और असत् व्यवहार में ये गोसाईं भी और-और पंडे तथा तीर्थालियों से किसी बात में कम न थे। इस स्थान के पुरातन और पवित्र होने में कोई संदेह नहीं; किंतु इन अपढ़ योगियों का दुराचरण देख घिन होती थी, और यह मठ यहाँ तक बदनाम हो गया था कि बहुत-से भलेमानुस शिष्ट जन वहाँ आना या साल में जो कई मेले इस मठ के हुआ करते थे, उनमें शरीक होना मर्यादा के विरुद्ध समझते थे। वैशाख और जेठ, दो महीने के प्रति मंगलवार को यहाँ बड़ी भीड़ होती थी; हज़ारों आदमी आस-पास के गाँव और नगर के यहाँ आते थे। सैकड़ों दूकानें लगती थीं। सबेरे से दस बजे रात तक इस मेले का ठाट रहता था।

हम अपने पाठकों को इसके पहले एक नए आदमी का परिचय दे चुके हैं, जो दोनो बाबुओं का मानो जीवन-सर्वस्व था, जिसके बिना एक क्षण उन्हें कल न पड़ती थी, और बाबुओं को इसके चंगुल में देख भीड़-की-भीड़ आछे-छिछोरे इसकी खुशामद में लगे रहते थे। उन्हीं में इस मठ के बहुत-से योगी भी थे। इसलिये इस मठ में तो मानो बसंतराम का राज्य-सा

था । जो-जो अत्याचार यहाँ आकर यह कर गुज़रता था, वे बुरे तो सबको लगते थे, कई एक बूढ़े-बूढ़े गोसाईं तो लहू का घूँट पीकर रह जाते थे, पर उन बाबुओं के मुलाहिज़े से कुछ न कहते थे । यद्यपि ऐसे-ऐसे छिछोरों के दुःसंग से इन दोनों बाबुओं की भी सब क़लई दिन-दिन खुलती जाती थी, और सम्मान जैसा औवल दरजे के रईसों को मिलना चाहिए, उसमें भले लोगों के बीच नित्य-नित्य कमी होती जाती थी, तो भी पुराने सेठ सुकृती हीराचंद की पहली बातों को याद कर सभी चुप रह जाते थे । क्या अचरज, इन गोसाइयों को भी हीराचंद ही की भलमनसाहत का ख़याल आ जाता हो, जिससे ये लोग बसंता तथा इन बाबुओं का अनेक तरह का उपद्रव मठ के मेलों में देखकर भी चुप रह जाते थे । जो हो, हम प्रस्तुत का अनुसरण करते हैं ।

एक बूढ़ा ब्राह्मण—"हाय-हाय ! हाँफते-हाँफते कंठगत प्राण आ रहा है । झूठ कहते हों, तो हमारे सात पुरखा नरक में गिरें । न जानिए, आज किस कुसाइत में घर से निकले कि हाथ गरम होना कैसा, एक फूटी झंझी से भी भेंट न हुई । भीड़ और हुल्लड़ के घिस्संघिस्सा में अंग चूर-चूर हो गए । भला, बचकर किसी तरह से बाहर निकल आए, मानो लाखों भर पाए । क्या कहते हो, 'तो क्यों आया ?' 'अरे, न आवें, तो क्या करें ।' एक तो ग़रीब, दूसरे बड़ा कुनबा । अब भी क्या हीराचंद-से दानी और पात्रापात्र का विवेक रखनेवाले बैठे

हैं, जो हम-ऐसों की दीनता पर पिघल उठेंगे ? ईश्वर इनका सत्यानास करे, न जानिए, कहाँ-कहाँ के ओछे-छिछोरे इकट्ठे हो गए कि हमारे बाबुओं को कुढंग पर चढ़ाय बिगाड़ डाला। सेठ के समय तो हम किसी के आगे हाथ पसारना कैसा, घर के बाहर कभी पाँव भी नहीं रखते थे। वही अब तुच्छ-से-तुच्छ आदमियों के सामने दिन-भर गिड़गिड़ाते फिरते हैं, तब भी साँझ को अच्छी तरह पेट-भर अन्न नहीं मिलता। आज इस मठ का मेला समझ आए थे कि किसी से दो-चार पैसे पा जायँगे, सो इस बसंता का सत्यानास हो, पास का भी जो कुछ आज कमाया था, सब खो चले, और तन का एक-एक कपड़ा, देखो, चिरवत्ती हो गया। बचा की ख़ूब पूजा भी की गई, जनम-भर याद रहेगा। अरे, यह कहो, न जानिए किसकी पुन्याई सहाय लगी कि दोनो बाबू सँभलकर निकल भागे, नहीं तो सब इज्ज़त ख़ाक में मिल जाती। और, कब तक बचे रहेंगे ? ये ही लच्छन हैं, तो एक दिन बढ़ई का हाथ गया दाख़िल है। "बकरे की मा कब तक ख़ैर मनावेगी ?" हा ! सोने का घर खाक में मिला जाता है। क्या कहते हो, 'बड़े सेठ बाबुओं को तो चंदू के हाथ में सौंप गए थे।' हाँ-हाँ, सौंप तो गए थे, पर कंटकरूप दुष्टों के रहते जब उस बेचारे की कुछ चलने पाती ? लाचार हो वह भी छोड़कर चला गया। चंदू-से गुनी, सुशील, भलेमानुस की तो जहाँ तक तारीफ़ की जाय, सब कम है। उसके सुयश की सुगंधि के सामने बूढ़े बाबा

मंडन महाराज को हम लोग भूल ही गए थे। धिक्! नराधम! पापी! कर्म-चांडाल! तेरा इतना साहस! हा-हा-हा! बचा पर ख़ूब पड़ो; स्त्रियों का भेख धर कैसा वइयरवानियों में जा मिला था। पूजा भी हुई, और अब पुलिस के चंगुल में पड़ गया है। वे लोग सब तके हुई हैं, बसंतवा से भरपूर दाँव लेंगे। सच है, बुरे काम का बुरा अंजाम। दोनो बाबू भी बसंता की इस दुष्ट अभिसंधि में अवश्य थे। कुशल हुई, जो इन्हें भी इसमें फँसते देख एक आदमी इनको उस भीड़ से किसी तरह अलग कर गाड़ी पर चढ़ाय ले भागा। यह आदमी कौन था, मैं अच्छी तरह न पहचान सका; पर मुझे दूर से चंदू का-सा चेहरा उसका मालूम हुआ। जो हो, अब हम भी घर जायँ।"

---

## आठवाँ प्रस्ताव

कोयला होय न ऊजरो, सौ मन साबुन लाय।

यद्यपि इन दोनो बाबुओं की आँख का पानी ढरक गया था, शरम और हया को पी बैठे थे, कार्य-अकार्य में इन्हें कुछ संकोच न रहा, धृष्टता, अशालीनता और बेहयाई का जामा पहन सब भाँति निरंकुश और स्वच्छंद बन गए थे; पर उस दिन इनका पुलिस के घेरे में आ जाना और बसंता के साथ इनकी भी लेव-देव करने पर लोगों की ताक देख दोनो कुछ कुछ सहम-से गए, और मन-ही-मन अपनी कुचाल पर क़ायल होने लगे। वह आदमी, जिसे हम सौ अजान में एक सुजान कहेंगे, और

जो इन दोनो को भीड़ से बाहर निकाल लाया, जिसका पूरा परिचय हम अपने पाठकों को दे चुके हैं, उसने इन्हें घर पहुँचाय इनसे विदा माँगी। ये दोनो अत्यंत लज्जित थे। आँखें इसके सामने न कर सके। सिर नीचा किए घर तक गाड़ी पर बैठे चले आए। गाड़ी से उतरते भी इनकी कुछ बोलने की हिम्मत न होती थी; किंतु उसके उस समय के हृद्गत भाव से प्रकट होता था कि ये दोनो उस महात्मा सुजान के बड़े एहसानमंद हैं। इन्हें अत्यंत लज्जित और बुझा-मन देख यह बोला—"बाबू, तुम कुछ मत डरो, न किसी तरह का संकोच मन में लाओ। बीती बात का अब विचार ही क्या? 'गतं न शोचामि।' आगे के लिये सँभलकर चलो। अभी कुछ बिगड़ा नहीं, सबेरे का भूला साँझ को घर आवे; तो उसे भूला न कहेंगे। अब इस समय तो रात हो गई, थके-थकाए हो, जाओ, खा-पीकर आराम करो। कल सबेरे मैं तुम्हारे यहाँ फिर आऊँगा।" यह कहकर उसने अपने घर की राह ली।

अब नित्य के आनेवाले सन्नाटा पाय लौटने लगे। कोई कहता था—"आज क्या सबब, जो बाबुओं के बैठने का कमरा बंद है। बसंता भी नहीं देख पड़ता। बाबुओं को भगवान् सलामत रक्खे, हम लोगों की घड़ी-दो घड़ी बड़े चैन और दिल्लगी में कटती है। हम लोग यहाँ बैठ कितना हल्ला-गुल्ला और धौल-धक्कड़ किया करते हैं, पर बाबू साहब कभी चूँ नहीं करते।" दूसरे ने कहा—"सच है, रियासत के माने ही यह हैं। इस समय अब इस दहार में तो दूसरा ऐसा रईस नहीं है। हरकसेबाशद कोई आवे,

यहाँ से आज़ुर्दा न लौटेगा।" तीसरे ने कहा—"सच है, इसमें क्या शक। बाबुओं की जितनी तारीफ़ की जाय, सब जा है। पर यार, बसंता भी बड़ा बेनज़ीर आदमी है। यह सब उसी के दम का ज़हूरा है। जब से बसंतराम का अमल-दख़ल हुआ, तब से हम लोगों ने भी इस दरबार में जगह पाई। बड़ी बात, मनहूस-क़दम उस पंडत का तो पैरा उड़ा। बसंता ही ऐसा था, जिसने हज़ार-हज़ार कोशिशों के बाद बाबुओं को उसके चंगुल से छुड़ाय आज़ाद किया। न जानिए कहाँ का मरा-बिलाना कुंदे-नातराश इस दरबार में आ भिड़ गया था।"

इधर इन दोनो सेठ के लड़कों में बड़े को, जिसे छोटे की अपेक्षा कुछ-कुछ समझ आ चली थी, मन में भाँति-भाँति का हरन-गुनन करते टाइमपीस पर घंटा और मिनट गिनते नींद न पड़ी। रात भोर हो गई; चिड़िया चहचहाने लगीं; स्कूल के पढ़नेवाले परिश्रमी बालक ब्राह्मी वेला समझ अपना-अपना पाठ घोख-घोख सरस्वतीदेवी का अनुशीलन करने लगे। प्रत्येक घर में वृद्धजन समस्त दिन के कल्याण-सूचक हरि के पवित्र नामोच्चारण में तत्पर हो गए; चंडूख़ानों में अफ़ीमची और चंडूबाज़ों की रात-भर की पार्लियामेंट के बाद पीनक की सुखनींद का प्रारंभ हो गया; आस-पास मंदिरों में मंगला-आरती के समय का सूचक घड़ियाल और शंख-शब्द सुन भक्तजन जय-जय कहते दर्शन के लिये दौड़े, फेरीवाले भिखमंगे भोर ही अलापते गलियों में घूमने लगे; पौफटे होते ही अपनी प्रेयसी निशा-नायिका का वियोग

समझ चंद्रमा के मुख पर उदासी छा गई। वने-वने के सव साथी होते हैं, बिगड़े समय कोई साथ नहीं देता, मानो इस वात को सिद्ध करते हुए अपने मालिक चंद्रमा को विपत्ति में पड़ा देख नमकहराम नौकर की भाँति तारागण एक-एक कर ग़ायव होने लगे ; अथवा काल-कैवर्त ने आकाश-महासरोवर में निशारूपी जाल बड़ी दूर तक फैलाय जीती हुई मछली की भाँति सवों को एक साथ समेट लिया; अथवा यों कहिए कि सूर्य लक्का कवूतर की तरह अपनी कावुक से निकलते ही चावल की वड़ी-वड़ी किनकी-से इन तारों को एक-एक कर सवों को चुग गया ; अथवा प्रातःसंध्या अपने रक्तोत्पल-सदृश हाथ को सव ओर फैलाय-फैलाय अपनी प्रिय सखी वासर-श्री का उसके कांत दिन-मणि सूर्य से मिलने का समय जान, इन तारा-मौक्तिकों का हार उसके लिये गूँथने को इन्हें इकट्ठा कर रही है। अपने विजयी प्रभा-कर की विजय-पताका-समान सूर्योदय की लाली सव ओर दिशा-विदिशाओं में छा जाते ही अंधकार का हृदय-सा मानो फट सौ-सौ टुकड़े हो गया। शनैः-शनैः उदयाचल वालमंदार के फूलों का गुच्छा-सा, अथवा पूर्व-दिगंगना के लिलार पर रोली का लाल वेंदा-सा, या उसी के कान का कुंडल-सा या आसमान-गुंवज पर सोने का कलश-सा अथवा देवांगनाओं के मस्तक का शीस-फूल-सा अथवा चराचर विश्व-मात्र को निगल जानेवाले काल महासर्प का अंडा-सा सूर्य-मंडल कमल के वन को प्रफुल्लित करता हुआ, चक्रवाक के विरहाग्नि को वुझाता हुआ, जंगम

जगत्मात्र के नेत्रों को प्रकाश पहुँचाता हुआ, श्रोत्रिय, धर्मशील ब्राह्मणों को संध्या और अग्निहोत्र आदि कर्म में प्रवृत्त करता हुआ पूर्व दिशा में सुशोभित होने लगा।

सब लोग अपने-अपने रोज़मर्रे के काम में प्रवृत्त हुए। बाबू भी रात-भर जागने की ख़ुमारी में अलसाने-से शौचकर्म और दतून-कुल्ला से फ़ारिग़ हो अपने कमरे में आ बैठे। किंतु आज रोज़ का-सा इनका चेहरा ख़ुश न था। देखते ही भासित हो जाता था कि चित्त में इनके कोई गहरी चोट का धक्का लग गया है। नौकर-चाकर तथा और सब लोग, जो इनके पास नित्य के आने-वाले थे, इन्हें उदास और बुझा-मन देख मन-ही-मन अनेक तरह के तर्क-वितर्क करने लगे। पर इनकी उदासी का कारण न जान सके।

इसी समय चंदू दूर से आता हुआ देख पड़ा। पंडिताई, नेक-चलनी और पल्ले सिरे का खरापन इसके चेहरे पर झलक रहा था। इसकी गंभीरता और सागर-समान गुण-गौरव में स्वच्छ उदार भाव मानो लहरा रहा था। इन बाबुओं की भलाई और ख़ैरख़्वाही इसे दिल से मंज़ूर थी। लल्लोपत्तो, ज़ाहिरदारी और नुमाइश की ज़रा भी गुंजाइश इसके मिज़ाज में न पाय दुनिया-दारों की इसके सामने कुछ न चलती थी। जो लोग बाबुओं को फँसाय अब तक बेखटके लूट-मार खा-पी रहे थे, उनके जी में खलबली पैठ गई। कानोंकान कहने लगे—"क्या है, जो यह मनहूस-क़दम आज फिर यहाँ देख पड़ा। इसके सामने अब हम

लोगों की एक भी न चलेगी। बड़ी मुश्किलों से इसका पैरा यहाँ से बह गया था। क्या सबब हुआ, जो बाबुओं को आज इसकी फिर चाह हुई ?" चंदू को आता देख बाबू उठ खड़े हुए। इसके पाँव छू, हाथ पकड़ अलग कमरे में ले गए, और मना कर दिया कि यहाँ कोई न आवे। यहाँ बैठ इधर-उधर की दो-एक और बातें कहने के उपरांत चंदू बोला—

"बाबू, अब तुम्हें इन साथियों की परख हुई होगी। ये सब अपने मतलब के यार हैं, तुम्हें सब तरह पर बिगाड़ अपने-अपने घर बैठेंगे। सपूती के ढंग से बड़े सेठजी के दिखाए पथ पर जो अब तक तुम चले गए होते, तो तुम्हारे सुयश की सुगंध संसार में चौगुनी फैलती। सभ्य-समाज और बड़े लोगों में प्रतिष्ठा और इज्ज़त पाते ; धन-संपत्ति भी चंद्रमा की कला-समान दिन-दिन बढ़ती जाती। बाबू, मैं जी से तुम्हारा उपकार और भला चाहता हूँ ; किंतु जब मैंने अपनी ओर तुम्हारी अश्रद्धा और अरुचि देखी, तो अलग हो गया। अस्तु। अब भी तुम चेतो, और अपने को सँभालो, अभी कुछ बहुत नहीं बिगड़ा। सेठजी के पुण्य-प्रताप से तुम्हें कमी किस बात की है ? बाबू, तुम ऐसे निरे मूर्ख भी नहीं हो, जो अपना भला-बुरा न समझ सकते हो। किंतु तुम भी क्या करो, यह नई जवानी का मदरूप अंधकार ऐसा ही होता है, जो नसीहत और उपदेश की सहस्र दीपावली की जगमगाहट से भी दूर नहीं हो सकता। इस उमर में जो एक प्रकार की ख़ुशी सवार हो जाती है, जिसे दर्पदाहज्वर

की गरमी कहना चाहिए, वह सैकड़ों शीतोपचार से भी नहीं घट सकती। विष-समान विषयास्वाद से उत्पन्न मोह ऐसा नहीं होता कि झाड़-फूँक और टोना-टनमन का कुछ असर उस पर पहुँचे।

"इस चढ़ती जवानी में यदि कहीं ईश्वर का दिया भोग-विलास का सब सामान और मनमानी धन-संपत्ति मिली, तो शिक्षा, विज्ञान, चातुरी और फ़िलॉसफ़ी सब उलटा ही असर पैदा करती हैं। उपदेश और विद्याभ्यास, दोनो इसीलिये हैं कि आदमी को बुरे कामों की ओर से हटाय भले कामों में लगावें। यह एक प्रकार का ऐसा स्नान है, जो शरीर के नहीं, वरन् मन के मैल को धोकर साफ़ कर देता है। इस पुनीत तीर्थोदक में एक वार भी जिसने भक्ति-श्रद्धा से स्नान किया, वह जन्म-भर के लिये शुद्ध और पवित्र हो जाता है। और, इस तीर्थोदक से स्नान का उपयुक्त समय यही था। सेठजी-से बुद्धिमान् यह सब सोच-समझ तुम्हें मेरे सिपुर्द कर आप निश्चिंत हो बैठे थे। मैंने पहले ही कहा कि श्रद्धा इसके लिये पहली बात है। जब उसमें कमी देखी गई, तो मैं अलग हो गया। फिर भी सेठजी का पूर्व-उपकार समझ जी न माना, इसलिये आज फिर मैंने तुम्हें एक वार और चिताने का साहस किया। आशा है, अब आप मेरे इस कहने पर कान देंगे, और अपने काम-काज में मन लगावेंगे।

"तुम्हें चाहिए कि तुम ऐसे ढंग से चलो कि भले मनुष्यों में

तुम्हारी हँसी न हो, बड़े लोग तुम्हें धिक्कारें नहीं; तुम्हारे हितैषी तुम्हारा सोच न करें ; धूर्त, भाँड़-भगतिए तुम्हें ठगें नहीं; चतुर सुजान तुम्हारा निरादर न करें ; ख़ुशामदी लोग अपने कपट-जाल में तुम्हें फँसाय शिकार न बनावें ; ओछे और टुच्चों की सोहबत से दूर हटते रहो। बुद्धिमान् लोग कह गए हैं—

नाक, लाज अरु आफ़त-काज—
द्रव्य बचा के राखो साज।

"यह मत समझो, सेठजी की कमाई सदा ऐसी ही स्थिर बनी रहेगी। बराबर ख़र्च करते रहो, और उसमें मिलाओ कभी कुछ नहीं, तो असंख्य धन भी नहीं रह जाता। और भी कहा है—

घर का ख़र्च देखा करो ;
भारी देखो, हलका करो।

"बाबू, अभी तुम्हें नहीं मालूम होता, पीछे पछताओगे। चिकने मुँह के ठग की भाँति इस समय सभी तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाते हैं। पीछे तुम्हारी छाया तक बरकाने लगेंगे। कहावत है—'छूछा, तोहिं को पूछा ?'

तिहीदस्ती भी चलाती है कहीं अच्छी चाल ;
ख़ाली थैली न खड़ी होगी कभी लक्खों साल।

'मन नहिं सिंधु समाय।' इस मन की उमंग को बढ़ाते क्या लगता है। एक बात में ज़रा-सा तरहदारी और अच्छेपन का दख़ल-भर होना चाहिए। अच्छी धोती को अच्छा अँगरखा, अच्छी पगड़ी न होगी, तो सजावट और तरहदारी कोसों दूर

भगेगी। जब अच्छा दुशाला हुआ, तो मोतियों की माला क्यों न हो। नफ़ीस पोशाक के लिये नफ़ीस सवारियाँ भी होनी ही चाहिए। जब सवारी हुई, तो दस-पाँच यार-दोस्त क्यों न हों? अब खान-पान, लेन-देन सब उज्ज्वल होने की ओर ख़याल दौड़ा। तात्पर्य यह कि एक बात में भी जहाँ ज़रा-सी तरहदारी और अच्छेपन को जगह दी गई कि वह रुई की आग हो जाती है। किसी ने सच कहा है—

एक शोभा के लिये मन मारा,
तो किया अनेक पीड़ा से निस्तारा।

"बाबू, तुम समझते हो, सदा दिन ही रहेगा, रात कभी होगी ही नहीं। बड़े सेठ साहब कितनी मेहनत और उद्योग से तुम्हारे लिये कुबेर की-सी संपदा संचित कर गए हैं। तुम्हारी सपूती इसी में है कि तुम उसे बनाए रहो। तुम कहोगे, यह जाति का दरिद्र ब्राह्मण अमीरी की क़दर जाने क्या! पर मैं कहता हूँ, वह अमीरी किस काम की, जिससे पीछे फ़क़ीरी झेलनी पड़े। सच है—

धनवंतों के घर के द्वार
सब सुख आवैं बारंबार।
जिसके होवै पैसा हाथ,
उसका देवैं सब कोई साथ।
उद्योगी के घर पर अड़ी
लक्ष्मी झूमें खड़ी-खड़ी।

"धनी के पास सब आते हैं, वह किसी को ढूँढ़ने नहीं जाता। कहा है—

प्यासा ढूँढ़ै मीठा कूप ;
कूप न ढूँढ़ै प्यासा भूप।

"बाबू, मैंने यावत् बुद्धिवलोदय तुम्हें चिताने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। मानना न मानना तुम्हारे अधीन है—

"स्याने का ज़रा इशारा ; मूरख को कोड़ा सारा।"

यह कह चंदू उठ खड़ा हुआ। बाबू ने बड़ी नम्रता-पूर्वक प्रणाम किया। चंदू आशीस दे घर की ओर चंपत हुआ। कुछ दिन तक इसकी नसीहत का बाबू पर बड़ा असर रहा, और ठीक-ठीक क्रम पर चला किया। अंत को हज़ार मन साबुन से धोते रहो, वही कोयले-का-कोयला।

---

## नवाँ प्रस्ताव

चार दिना की चाँदनी, फिर अँधियारा पाख।

चंदू के उपदेश का असर बड़े बाबू पर कुछ ऐसा हुआ कि उस दिन से यह सब सोहबत-संगत से मुँह मोड़ अपने काम में लग गया। सवेरे से दोपहर तक कोठी का सब काम देखता-भालता था, और दोपहर के बाद दो बजे से इलाक़ों का सब बंदोबस्त करता था। वसूल और तहसील की एक-एक मद खुद आप जाँचता था। उजड़े असामियों को दिलासा दे और उनकी

यथोचित सहायता कर फिर से बसाता था, और जो कारिंदों की ग़फ़लत से सरहंग हो गए थे, उन्हें दबाने और फिर से अपने क़ब्ज़े में लाने की फ़िक्र करता था। सुबह-शाम जब इन सब कामों से फ़ुरसत पाता था, तो गृहस्थी के सब इंतज़ाम करता था। भाई-बिरादरी, नाता-रिश्ता तथा हवेली में किस बात की ज़रूरत है, इसकी सब सलाह और पूछ-ताछ नित्य घड़ी-आध घड़ी अपनी मा से किया करता था। इसकी मा रमादेवी अब इसे सुचाल और क्रम पर देख मन-ही-मन चंदू की बड़ी एहसानमंद थी, और जी से उसे असीसती थी। चंदू का इन बाबुओं से यद्यपि कोई लगाव न रह गया था, पर रमादेवी से सब सरोकार इसका वैसा ही बना रहा, जैसा हीराचंद से था। रमा बहुधा चंदू को अपने घर बुलाती थी, और कभी-कभी ख़ुद उसके घर जाय इन बाबुओं का सब हाल और रंग-ढंग कह सुनाती थी। चंदू पर रमा का पुत्र का-सा भाव था, बल्कि इन दोनो की कुचाल से दुःखी और निराश हो चंदू को इसने अपना निज का पुत्र मान रक्खा था। रमा यद्यपि पढ़ी-लिखी न थी, पर शील और उदारता में मानो साक्षात् शचीदेवी की अनुहार कर रही थी। पुरखिन और पुरनियाँ स्त्रियों के जितने सद्गुण हैं, सबका एक उदाहरण बन रही थी। सरल और सीधी इतनी कि जब से अपने पति हीराचंद का वियोग हुआ, तब से दिन-रात में एक बार सूखा अन्न खाकर रह जाती थी। सब तरह के गहने और भाँति-भाँति के कपड़ों के रहते भी केवल दो धोतियों से काम

रखती थी। कितनी राँड़-बेवाओं और दीन-दुखियाओं को, जिन्हें हीराचंद गुप्त रूप से कुछ-न-कुछ दिया करते थे, यह बराबर अपनी निज की पूँजी से, जो सेठ इसके लिये अलग कर गए थे, बराबर देती रही। शील और संकोच इसमें इतना था कि जो कोई इसे अपनी ज़रूरत पर आ घेरता था, उसके साथ, जहाँ तक बन पड़ता था, कुछ-न-कुछ सलूक करने से नहीं चूकती थी। घर के इंतज़ाम और गृहस्थी के सब काम-काज में ऐसी दक्ष थी कि बहुधा जाति-बिरादरीवाले भी काम पड़ने पर इससे आकर सलाह पूछते थे। बूढ़ी हो गई थी, पर आधा घूँघट सदा काढ़े रहती थी। केवल नाम ही की रमा न थी, गुण भी इसमें सब वैसे ही थे, जिनसे इसका रमा यह नाम बहुत उचित मालूम होता था। प्रायः देखा जाता है कि सास और बहुओं में और बहू-बहू में भी बहुत कम बनती है, और इस न बनने में बहुधा हम उन कमबख़्त सासों ही का सब दोष कहेंगे, क्योंकि बहू बेचारी का तो पहलेपहल अपने मायके से ससुर के घर में आना मानो एक दुनिया को छोड़ दूसरी दुनिया में प्रवेश करना है, फिर से नए प्रकार की ज़िंदगी में पाँव रखना है ; जिसे यहाँ कुछ दिनों तक सब जितनी बातें नई-नई देख पड़ती हैं। जैसे कोई पखेरू, जो पहले स्वच्छंद मनमाफ़िक़ विचरा करता था, पिंजड़े में एकबारगी लाय बंद कर दिया जाय ; सब भाँति पराधीन, आज़ादगी को कभी ख़्वाब में भी दख़ल नहीं, अंतिम सीमा की लाज और शरम ऐसा गह के इसका आँचल पकड़े रहती है कि

कभी एकदम के लिये भी छुट्टी नहीं दिया चाहती। इस दशा में जो चतुर-सयानी घर की पुरखिनें हैं, वे ऐसे ढंग से साम-दाम के साथ नई बहुओं से बरतती हैं कि उन्हें किसी तरह का क्लेश न हो, और सब भाँति अपने बस की भी हो जायँ। सास यदि फूहर और गँवार हुई, तो दोनों में दिन-रात की कलकल और दाँता-किटकिट हुआ करती है। इस हालत में वह घर नहीं, वरन् नरक का एक छोटा-सा नमूना बन जाता है। इस रमा का क्या कहना है; यह तो मानो साक्षात् कोई देवी थी। स्त्रियों के दुर्गुणों की इसमें छाया तक न आई थी। इसने अपनी दोनों बहुओं को ऐसे ढंग से रक्खा कि वे दोनों इसकी अत्यंत भक्त और आज्ञाकारिणी हुईं, और आपस में ऐसी मिल-जुलकर रहती थीं कि बहन-बहन मालूम होती थीं। यह कोई नहीं कह सकता कि ये देवरानी-जेठानी हैं। ससुराल के सुख के सामने मायके को दोनों बिलकुल भूल गईं। पाठकजन, हम आशा करते हैं, आप लोगों को ऐसी ही रमा की-सी घर की पुरखिन और दो सुशीला बहुओं की-सी बहू मिलें, जैसी सेठ हीराचंद और इन दोनों बाबुओं को मिली हैं।

---

## दसवाँ प्रस्ताव

संगत ही गुन ऊपजै, संगत ही गुन जाय।

हीराचंद के घर से दस घर के फ़ासिले पर कुछ कच्चा कुछ

पक्का एक मकान था। उसमें नंददास नाम का एक मनुष्य रहता था। यह कौन था, और कब से यहाँ रहता था, इसका कोई ठीक पता नहीं मालूम ; पर इतना अलबत्ता पता लगता था कि यह हीराचंद की बिरादरी का था, और इन बाबुओं को भैया-भैया कहा करता था। इससे यह भी कुछ टोह लगती थी कि इसका बाबुओं के घराने से कोई दूर का रिश्ता भी रहा हो, तो क्या अचरज ! बाबू के सब नौकर इसे नंदू बाबू कहा करते थे। बाप इसका शुरू में कपड़े तथा दूसरी-दूसरी देशी चीज़ों की एक साधारण-सी दूकान करता हुआ निरा बक्काल के सिवा किसी गिनती में न था। मसल है, "तीन दिवाले साव।" वह इस हिकमत को अमल में लाकर कई बार दिवाला काढ़ और पीछे आधे-तिहाई पर अपने देनदारों से मामला कर लाख-पचास हज़ार की पूँजी भी इसके लिये छोड़ गया था। इसलिये नंदू अपना दिमाग़ इन बाबुओं से कुछ कम न रखता था। थोड़ी उर्दू जानता था; टूटी-फूटी अँगरेज़ी भी बोल लेता था। वहीं के दिहाती मदरसों में पढ़ा था; दो-एक छोटे-मोटे इम्तिहान भी पास किए थे। बस, इतना ही कि मुख़्तारी और मुंसिफ़ी तक वकालत करने का अख़्तियार हासिल था। पर क़ानूनी लियाक़त में अपने आगे हाईकोर्ट के वकीलों को भी कुछ माल न गिनता था, और साधारण लियाक़त में तो बृहस्पति और शुक्राचार्य को भी अपना चेला समझे बैठा था। तरहदारी और अमीरी में पूरा दम भरता था ; पर उस तरह की तरहदारी और अमीरी नहीं कि

गाँठ का पैसा खो बैठे, वरन् ऐसे-ऐसे लटके सीखे था कि किसी ऐसे बड़े मालदार नए उभरे हुए को ढूँढ़े, जिसे कोई रोकने-टोकनेवाला न हो, वरन् वह कमसिनी ही में .खुदमुख़्तार बन बैठा हो। नितांत अल्पज्ञता के कारण इतना मदांध और निर्विवेक था कि बहुधा अपने छिछोरपन और सिफलापन के सबब शिष्ट-समाज में कई बार भरपूर दक्षिणा पा चुका था, तो भी अपने छिछोरपन से बाज़ नहीं आता था। यदि कोई समझदार और तमीज़वाला होता, तो आत्मगौरव न रहने के रंज से समाज में फिर मुँह न दिखलाता। पर ग़ैरत को तो यह घोलकर पी बैठा था; इसकी आँखों का पानी ढरक गया था। शरम और हया कैसी होती है, जानता ही न था। सच मानिए, शिष्ट-समाज और शराफ़त के कलंक ऐसे ही लोग होते हैं, जो ज़ाहिरा में दिखलाने को ऐसा रँगे-चुँगे चूना-पोती क़ब्र के माफ़िक़ बने-ठने रहते हैं कि बस, मानो रियासत के खंभ हैं, शिष्टता के स्रोत हैं, भलमनसाहत के नमूने हैं; पर भीतर पैठकर देखा, तो उनके घिनौने और मैले कामों से जी इतना घिनाता है कि ऐसों का संपर्क कैसा, मुख-मात्र के अवलोकन में महाप्रायश्चित्त लगता है। ऐसों के संपर्क से जो बचे हुए हैं, उन पर ईश्वर की मानो बड़ी कृपा है। आँखें चुंधी, गाल फूले, चेचक-रू, कोती गरदन, पस्त क़द, किंतु बनावट और सजावट में यह कामदेव से उतर-कर दूसरा दरजा अपना ही क़ायम करता था। नंदू ही के समान-शील लोगों का एक गण-का-गण था, जो महादेव के

गण नंदी-भृंगी के समान इसके आश्रित थे। उन सबों में एक इसका बड़ा विश्वासपात्र था। नाम इसका रघुनंदन था, पर नंदू इसे रग्घू कहा करता। रग्घू जाति का ब्राह्मण था, पर कदर्यता में अत्यंत पामर महाशूद्र से भी गया-बीता था। केवल नामधारी ब्राह्मण था। नंदू का कोई ऐसा काम न होता था, जिसमें रग्घू मौजूद न रहे। सच तो यों है कि नंदू इस रग्घू का इतना आश्रित हो गया था कि बिना इसके नंदू लुंज-पुंज-सा रहता। तारबर्क़ी के समान नंदू जिस काम में इसे प्रवृत्त कर देता था, उसे पूरा होते ज़रा देर न लगती थी। बसंता-जैसा उन बाबुओं का परिचारक और मुफ़्तख़ोरा ख़ुशामदी था, वैसा ही रग्घू नंदू बाबू का अनुचर था। अंतर उसमें और इसमें केवल इतना ही था कि बसंता निपट निरक्षर कुंदे-नातराश था, पर रग्घू को अक्षरों से भेंट थी। पर वही नाम-मात्र को, इतना कि जिससे हम इसे पढ़ा-लिखा या साक्षर नहीं कह सकते। बसंता निपट उजड्ड और जघन्य था; किंतु रग्घू चालाकी में एकता और अमीरों का रुख़ पहचान उन्हें ख़ुश रखने के हुनर में बहुत प्रवीण था। जहाँ-जहाँ नंदू आया-जाया करता था, वहाँ-वहाँ रग्घू उसका पुछल्ला ही था। तब क्योंकर संभव था कि इसके चरण भी वहाँ न पधारें। इस द्वार से प्रायः अनंतपुर के छोटे-बड़े रईस तथा आस-पास के ताल्लुक़ेदारों से इसकी भरपूर जान-पहचान हो गई थी। यहाँ तक कि इन अमीरों में यह 'नंदू के रग्घू' इस नाम से प्रसिद्ध था। रग्घू की भी

अपनी तरहदारी और अंदाज़ का दिमाग़ नंदू बाबू से कुछ कम न था। घर में चाहे भूँजी भाँग न हो, पर बाहर यह ऐसे अंदाज़ से रहता था कि एक नया आदमी, जो इसका सब कच्चा हाल न जानता हो, इसे बड़ा अमीर मान लेता।

नंदू का बड़ा प्रेमी और दिली दोस्त एक तीसरा आदमी और था। इसके जन्म-कर्म का सच्चा हाल किसी को मालूम न था। पर नंदू इसे हकीम साहब कहा करता था। हकीम साहब अपने को नवाबज़ादा बतलाते थे, और अपनी पैदाइश का हाल बहुत छिपाते थे। पर जो असल बात होती है, वह किसी-न-किसी तरह अंत को प्रकट हो जाती है। असलियत इसकी यों है कि इसका बाप कंदहार का रहनेवाला, नवाब शुजाउद्दौला के ख़ुशामदी उमराओं में से था, इसने एक ख़ानगी रख ली थी। उससे एक लड़की और एक लड़का हुआ था। उपरांत का हाल फिर कुछ मालूम नहीं कि यह लखनऊ से यहाँ क्योंकर आया, और कब से यह अनंतपुर में आ बसा। उस कंदहारी अमीरो की दूसरी औलाद इसकी हमशीरा को भी बराबर तलाश करते रहिएगा, तो हमारे इसी क़िस्से में कहीं-न-कहीं पर अवश्य ही पा जाइएगा। यह हकीम साहब बाहर तो बड़े तूमतड़ाँग और लिफ़ाफ़े से रहते थे, पर भीतर मियाँ के सिवा एक टूटी खाट और तीन सनहकी के कुछ न था। असल में इसका नाम क्या था, कौन जाने; पर सब लोगों में हकीम फ़ीरोज़बेग कंदहारी अपने को मशहूर किए था। नंदू इसका सिद्ध-साधक था। इस-

लिये जहाँ तक बन पड़ता, छोटे-बड़े सबों में इसकी बहुत-सी तारीफ़ कर-कराय इसका प्रवेश उस ठौर करा देता था। यह क्यों इसकी इतनी सिफ़ारिश करता था, इसका भेद भी, आप धीरज धरे चले चलिए, खुली जायगा। इस बात की ताक में तो यह न जानिए कब से था कि किसी-न-किसी तरह हीराचंद के घराने में हकीम साहब का प्रवेश करावें ; पर चंदू के कारण, जो देखते ही आदमी की नस-नस पहचान जाता था, दूसरे हीराचंद की स्त्री रमादेवी के कारण, जिसे हकीमी दवा तथा मुसलमानों से किसी तरह संपर्क रखने में घिन और चिढ़ थी, नंदू की कुछ चलती न थी। हकीम भी यह केवल नाम ही का हकीम था ; हिकमत मुतलक़ न पढ़ा था। मुसलमानों में यह एक चलन है कि जो लोग कुछ पढ़े-लिखे होते हैं, और उन्हें कहीं कुछ जीविका का डौल न लगा, तो वे या तो हकीम बन जाते हैं, या मौलवी हो लड़कों को पढ़ा अपना पेट पालते हैं। पढ़ा-लिखा तो यह बहुत ही कम था ; पर शीन-क़ाफ़ का ऐसा दुरुस्त और बातचीत ऐसी साफ़ करता था कि कहीं से पकड़ न हो सकती थी कि यह मूर्ख है। तस्बी एकदम इसके हाथ से न छूटती थी। देखनेवाले तो यही समझते थे कि हकीम साहब बड़े दीनदार और ख़ुदा-परस्त हैं, पर इस तस्बी से कुछ और ही मतलब निकलता था। तस्बी की गुरियों को, जो वह ज़ाहिरा में फेरा करता था, सो मानो इसकी गिनती गिना रहा था कि इतनों को मैं अपनी चालाकी का शिकार बना चुका हूँ। तस्बी फेरते-फेरते जो कभी-कभी आँखें

मूँद लेता था, सो मानो बक-ध्यान लगाकर यह सोचता था कि नए असामियों को अब क्योंकर चंगुल में लाऊँ।

नंदू बहुधा बड़े बाबू से हकीम साहब की तारीफ़ किया करता था। दो-एक बार अपने साथ ले भी गया। पर सिवा वंदगी-सलाम और रामरमौअल के पहले के माफ़िक़ मुख़ातिब अपनी ओर तथा हकीम की ओर उन्हें न देख मन-ही-मन मसोसकर रह जाता, और चंदू को सैकड़ों गालियाँ दिया करता कि इस खूसट के कारण मेरा जमा-जमाया कारख़ाना सब उचटा जाता है।

अस्तु। एक रात को अचानक बाबू के पेट में ऐसा शूल उठा कि उन्हें किसी तरह कल न पड़ती थी। मारे पीड़ा के उनकी आँखें निकली पड़ती थीं, दाँत बैठे जाते थे। सब लोग घबरा गए। कई एक वैद्य और डॉक्टर बुलाए गए। दवाइयाँ भी चार-चार मिनट पर कई बार और कई क़िस्म की दी गईं। पर दवाइयाँ तो कोई सजीवन बूटी हईं नहीं कि गले के नीचे उतरते ही अमृत बन जायँ। किंतु अमीरी चोचलों में इतना सबर और धीरज कहाँ? सब लोग दौड़-धूप में लगे हुए—जिसे जो सूझा—तदबीरें कर रहे थे कि हकीमजी को साथ लिए नंदू भी आया, और बोला—"हकीमजी, इस जून आपके उस अर्क़ की जरूरत है, जो आपने एक बार मुझे दिया था। जनाब, अर्क़ क्या है, सजीवन मूल है, देखिए, कैसा तुर्त-फुर्त आपको राहत होती है।" हकीम बोला—"जनाब-आली, मुझे क्या उज़र है। अल्लाहताला आपको सेहत दे।" उसके पहले नींद की दवा

दी जा चुकी थी, औंघाई आ रही थी कि इसी समय हकीम का वह अर्क़ भी दिया गया। अर्क़ पीने के बाद ही बाबू को नींद आ गई, रात-भर ख़ब सोया किए।

दूसरे दिन नंदू फिर आया, और बाबू को चंगा देख बोला—"भैया, अब तक तो मैं ज़ब्त किए था, कुछ नहीं कहता-सुनता था, आपको वह पंडित किसी समय ऐसा धोखा देगा कि जन्म-भर पछताते रहेंगे। ये अंडित-पंडित गँवार-दल होते हैं। ये हम लोगों की शाइस्तह जमात में कभी क़दर पाने लायक़ हो सकते हैं? उस अहमक़ ने तो कल आपकी जान ही ली थी। यह तो कहिए, हकीम साहब कल आपके लिये ईश्वर हो गए, जान बचाई, नहीं तो कुछ बाक़ी रह गया था? हकीम साहब बड़े क़ाबिल आदमी हैं। मैं कहाँ तक उनकी तारीफ़ करूँ। अब तो आपसे उनसे सरोकार हो चला है; दिनोंदिन ज्यों-ज्यों उनसे लगाव बढ़ता जायगा, आप उनकी सिफ़तों को पहचानेंगे। ख़ैर, आपको सेहत हो गई। यक़ीन जानिए, कल की रात हम लोगों की ऐसे तरद्दुद में बीती कि जन्म-भर याद रहेगा। अच्छा, तो बंदगी, अब रुख़सत होता हूँ। दोपहर तक फिर आऊँगा, और हकीम साहब को भी लेता आऊँगा।"

इसकी बातों का बाबू पर कुछ ऐसा असर पड़ा कि उसी दम से इनकी तबियत में चंदू की ओर से घिन हो गई, और जो कुछ क्रम इसमें सुधराहट और भलाई के आ चले थे, सब बिदा होने लगे। इन धूर्त चौपटों की बन पड़ी। बसंता भी इस समय तक

जेल में छ महीने काट आ मिला। इन बाबुओं को ऐगुन की खान कर उन्हें अपना शिकार बनाने को पूरा अखाड़ा जमा हो गया। सच है—"संगत ही गुन ऊपजै, संगत ही गुन जाय।"

---

## ग्यारहवाँ प्रस्ताव

अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः कर-

सहस्रमपि। ( भारवि ) *

अनंतपुर की घनी बस्ती के बीचोंबीच लंबे दो खंड का एक पक्का मकान था, यद्यपि यह मकान बड़ा लंबा-चौड़ा तो न था, पर चारो ओर से हवादार और ऐसे क़िता का बना था कि रहने-वाले को सब ऋतु में आराम पहुँच सकता था। इस मकान के आगे के हिस्से में ऊँची पाटन का एक वसीह कमरा था, जिसकी दीवारें चटकीली सुफ़ैदी पुती ऐसी घुटी हुई थीं, मानो संगमर-मर की बनी हों। और, यह कमरा इसी ढंग से आरास्ता था कि इसमें थोड़ी ही अदल-बदल करने से अँगरेजी ढंग का उम्दा ड्राइंगरूम भी हो सकता था। बाहर से देखनेवाले समझते होंगे कि यह मकान बराबर ऐसा ही पुख़्ता, वसीह और सुथरा होगा, किंतु इस बघमुँहे मकान में यह कमरा ही सबकी नाक था। इस कमरे के पीछे पाँव रखते ही ओकाई आने लगती थी, और दुर्गंध से नाक सड़ जाती थी।

---

* नीचे को गिरते हुए सूर्य की हज़ार किरणें भी उसको सँभाल न सकीं।

हम पहले कह आए हैं, हीराचंद के समय जो अनंतपुर काशी और मथुरा का एक उदाहरण था, वह इन बाबुओं के ज़माने में दिल्ली और लखनऊ का एक नमूना बन गया। कुछ अरसे से इस मकान में एक ऐसे जीव आ टिके थे, जिनकी हुस्न-परस्तों के बीच उस समय अनंतपुर में धूम थी। यह कौन थे, कहाँ से आए थे, और कब से यहाँ आकर बसे थे, कुछ मालूम नहीं, न यही कुछ पता लगता कि किस वसीले से यहाँ अनंतपुर-ऐसे छोटे क़स्बे में यह आ रहे। यद्यपि दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, बंबई, लंदन, पेरिस आदि बड़े-बड़े नगरों में ऐसे जीवों की कसती नहीं है, हिंदू, मुसलमान, पारसी, यहूदी, कश्मीरी, आरमीनी, अँगरेज़ इत्यादि हरएक क़ौम और जाति में एक-से-एक चढ़-बढ़ के ख़ूब-सूरतों और सौंदर्य में एकता हुस्नवाले सैकड़ों मौजूद हैं, पर यहाँ स्थान-भ्रष्ट के समान ऐसों का आ टिकना अलबत्ता एक अचरज या कौतुक था! जो हो, यहाँ के लोग इसके निस्बत भाँति-भाँति की कल्पनाएँ कर रहे थे। कोई लखनऊ की बेगमातों में इसे मानते थे, कोई कहते थे—"नहीं-नहीं, यह दिल्ली के शाही घरानों में से है"; किसी का ख़याल था, यह कश्मीर से आई है इत्यादि; और कोई इसे यहूदिन समझता था। वयक्रम इसका देखने में बाईस के ऊपर और पचीस के भीतर मालूम होता था। गोरा रंग, दंतावलि दामिनी-सी दमकती हुई। इसके एक-एक, सुडौल, साँचे के ढले अंगों पर सुंदरापा बरस रहा था। बातचीत, चाल-ढाल और वज़ेदारी से यह किसी अच्छे घराने

की मालूम होती थी। इसको परदे में रहते न देख लोगों के मन में दृढ़ विश्वास जम गया था कि यह बंबई की कोई पारसिन या यहूदिन है। थोड़ा उर्दू-फ़ारसी भी पढ़ी थी, इसलिये इसकी ज़बान साफ़ और शीन-क़ाफ़ दुरुस्त था। एक प्रकार की संजीदगी और शऊर इसके चेहरे की मिठास और सलोनापन के साथ ऐसी मिल-जुल गई थी कि देखनेवाले के लोचनों की इसे बार-बार देखने की प्यास कभी बुझती ही न थी। यह अपने घने केश-जालों में अलकावली की गूथन से तथा विकसित-पुंडरीक-नेत्रों से वर्षा और शरत् ऋतुओं का अनुहार कर रही थी। पद्मराग-समान लाल और पतले होठ, गोल ठुड्डी, ऊँचा-चौड़ा माथा, कुंद की कली-से दाँत, सीधी और बराबर उतार-चढ़ावदार सुग्गा की टोंट-सी या तिल के पुष्प-सी नासिका, गोल कपोल, सुंदर आँखें, रेशम के लच्छे-से सिर के बाल, सब मिल इसके चेहरे पर एक अनोखी छवि दरसा रहे थे। यह अपने को हुमा बेगम के नाम से प्रसिद्ध किए थी। यह हुमा केवल ख़ूबसूरती और शऊर में ही एकता न थी, बल्कि गाना-बजाना इत्यादि कई तरह के हुनर में भी अपनी सानी न रखती थी। अनंतपुर-ऐसे छोटे-से क़स्बे में तो इस कोकिल-कंठी के सौंदर्य और गाने की धूम थी। यद्यपि यहाँ के छोटे बड़े रईस सभी इसके मुश्ताक़ हो रहे थे, किंतु नंदू तो इस पर तन-मन से लट्टू था। अपने मामूली काम-काज से फ़ुरसत पाते ही वहाँ पहुँचता था। हुमा भी, जो शऊर और ढंगदारी में पल्ले दर्जे की चालाक थी, इसकी नस-नस

पहचान गई थी, और इसे अपना खेलौना बनाए थी। अस्तु।
उच्च पद से नीचे गिरते हुए मनुष्य की हजार-हजार तदबीर सब
व्यर्थ होती है। सूर्य जब डूबने लगता है, तो उसे हजार किरन
सब एक साथ थामती हैं, पर वह नहीं रुकता, इसी तरह डूबते हुए
इन बाबुओं को सम्हाल रखने को चंदू तथा रमा ने कितनी-कितनी
तदबीरें और यतन किए, किंतु एक भी कारगर न हुए। अंत को
विष की गाँठ-सी यह हुमा ऐसी यहाँ आ बसी कि नंदू-सरीखे
कुढंगियों को अपने ढंग पर इन बाबुओं को ढुलका लाने और
गढ़कर अपना ही-सा बना देने के लिये मानो औज़ार हुई। मसल
है "एक तो तित लौकी, दूसरे चढ़ी नीभ।" ये बाबू लोग तो यों
ही यौवन और धन के मद से अंधे हो रहे थे। चंदू-सरीखे चतुर,
सयाने, प्रवीण के उपदेश का बीज लाख-लाख तरह पर उलटी-
सीधी बात सुझाने से कभी-कभी जम आता था, तो चारो ओर
से दुःसंग ओले के समान गिर उस टटके जमे हुए अंकुर का
कहीं नाम और निशान भी न रहने देते थे। इसी दशा में रूप-
राशि हुमा ने अपने रूप का ऐसा गहरा जादू इन पर छोड़ा कि
अब फिर सम्हलने की कोई आशा न रही। पर चंदू इनकी ओर
से सर्वथा निराश न हुआ था, यह इन्हें बार-बार सीधी राह पर
लाने की फिकिर में लगा ही रहा। सौ अजान में एक सुजान पर
ध्यान जमाए हमारे पाठक यदि हमारे साथ ऐसे ही धीरे-धीरे चले
चलेंगे, तो अंत को एक बार चंदू को कृतकार्य होते पावेंगे ही।

---

## बारहवाँ प्रस्ताव

धूर्तैर्जगद्वञ्च्यते *

अनंतपुर में छोटे-छोटे मुक़द्दमों की कार्रवाई के लिये तीसरे दरजे की मुंसिफ़ी, तहसीली की कचहरी और पुलिस का एक थाना के सिवा और कुछ न था। फ़ौजदारी तथा दीवानी के जो कोई और भारी पेचीदा मुक़द्दमे होते थे, सब वहाँ के ज़िले की कचहरी लखनऊ में भेज दिए जाते थे। यहाँ हाल में एक मुंसिफ़ मुक़र्रर होकर आए थे। यह कौन थे, क्या इनका मज़हब था, कुछ पता न लगता था; किंतु अपने रंग-ढंग से नेचरिए ज़ाहिर होते थे। पोशाक इनकी बिलकुल अँगरेज़ी वज़ा की थी, यहाँ तक कि कभी-कभी अँगरेज़ी टोपी ( हैट ) भी इस्तेमाल करते थे। खाने-पीने में भी इन्हें किसी तरह का परहेज़ न था। पैदाइश के तो हिंदू ही थे, पर यह नहीं मालूम कि इनकी क्या जाति थी। कोई इन्हें कश्मीरी समझता था, कोई इस समय के तालीमयाफ़्ता पढ़े-लिखे लालाओं में मानता था। डाढ़ी और चुटिया दोनो इनके न थीं, रंग भी गोरा था, इसलिये ज़ियादह लोगों की यही राय थी कि यह कोई हाफ़कास्ट केरानी या योरपियन हैं। पंडित या बाबू की उपाधि से इन्हें बड़ी चिढ़ थी, यह साहब बनने और अपने नाम के आगे मिस्टर लिखने की चाल बहुत पसंद करते थे, और अपने दोस्तों से इस बात की

---

* धूर्त लोग संसार को ठगते हैं।

ताक़ीद भी कर दी थी। यह मिज़ाज या बर्ताव में अपने को सुशिक्षितों के सिरमौर मानते थे, पर दिल पर सुशिक्षा का असर पहुँचा हो, इसका कहीं कुछ लेश भी न था। चालाकी में अच्छे-ख़ासे पट्ठे थे, दस-पंद्रह वर्ष मुंसिफ और सदराला रह कहीं कुछ थोड़ा-बहुत नीचा खाकर, बल्कि पिट-पिटाकर भी आठो गाँठ कुम्मैद हो चुके थे। भाँड़ों की नक़ल है कि दो सौ जूते खाकर भी इज़्ज़त न गँवाई। अपना रंग जमाने में तथा पाकेट गरम करने के फ़न में यह पूरे उस्ताद गुरुओं के भी गुरु थे, बल्कि यह ऐसे ही लोगों का क़ौल है कि ऐसा बुलंद इख़्तियार हासिल कर जिसने दियानतदारी की, और फूँक-फूँक पाँव रखता हुआ कोरे-का-कोरा बना रहा, उसे चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए। ऐसे लोग इसकी दो वजह कहते हैं—एक तो सियाह-सुफ़ैदी का कुल इख़्तियार हाथ में आना, दूसरे बमुक़ाबिले अँगरेज़ों के, जो छोटे-से-छोटे ओहदे पर डेढ़ हज़ार-दो हज़ार महीने में तनख़्वाह सहज में फटकारा करते हैं, हम जो जन्म-भर नौकरी कर लियाक़त का जौहर दिखलाते हुए बराबर नेक नाम रह बुड्ढे होते होते पाँच सौ-छ सौ महीने में पाने लायक़ समझे गए, तो इतने में होता ही क्या है, इतना तो हमारे शराब-कबाब का ख़र्च है। ऐसे लोगों की, जो अपने गुनों में सब तरह भरे-पूरे हैं, किसी नए ज़िले में पहुँचते ही पहली बात सरिश्ते की जाँच और मातहतों पर तंदीही करना है। जिन्हें अपने काम में बर्क़ और जाँच की कसौटी में कसने पर खरे और बेलौस पाया, उन्हें

तबदील या मौक़ूफ़ करने की फ़िकिर में लगे। यह सब इसलिये करते हैं, जिसमें ऊपर के हाकिमों को सबूत हो जाय कि यह दफ़्तर की सफ़ाई और अपने सरिश्ते का काम दुरुस्त रखने में बड़ा निपुण है। निश्चय जानिए, यह सब उसी से बन पड़ेगा, जो क़लम का ज़ोरावर, ज़बान का तर्रार और हिम्मत का दबंग हो। जो ऐसा नहीं है, बोदा और लियाक़त में ख़ाम है, वह पाकेट गरम करने में सदा डरा करेगा, उसे चालाकी के खुल जाने का ख़ौफ़ हमेशा दामनगीर रहेगा। पहले वर्ष-छ महीने भीतर-भीतर उस ज़िले का हाल दरियाफ़्त करेंगे कि यहाँ कौन-कौन रईस हैं, किस हैसियत के मुक़द्दमे लड़नेवाले हैं, क्या उनकी चाल-चलन है, किस तरह की उनकी सोहबत है, क्या काम उनके यहाँ होता है, इत्यादि-इत्यादि। किसी छोटे वकील को अपने इजलास में बड़ा रखना भी एक ढंग ऐसे लोगों का रहता है। अस्तु। हमारे उक्त मुंसिफ़ साहब यह सब भरपूर समझ-बूझ गए थे, और अब इस समय डेढ़ वर्ष के ऊपर यहाँ जमे इन्हें हो भी गया था। उनके ज़िले-भर में जो जहाँ जैसे छोटे-बड़े ताल्लुक़ेदार, रईस तथा सेठ, साहूकार, महाजन थे, सब इनकी निगाह पर चढ़ गए थे। उन्हीं में ये दोनों बाबुओं का भी सब कच्चा हाल दरियाफ़्त किए हुए यही ताक में थे कि किसी तरह कोई मुक़द्दमा इन बाबुओं का दायर हो। दो-एक मुलाक़ातें भी उनकी इनसे हो चुकी थीं, तोहफ़े और नजर-भेंट की चीज़ें तो अक्सर आया ही करती थीं। नंदू, जिसे बाबुओं ने थोड़े दिनों

से अपना मुख़्तारआम कर रक्खा था, मुंसिफ़ साहब तक बाबुओं की रसाई करा देने का एक ज़रिया था। मसल है "चोरै चोर मौसियायत भाई।" इधर ये तो कुछ अपनी गौं में थे कि यह बड़े आला रईस के घर का गुर्गा है, इसके ज़रिए मनमाना माल कट सकता है, उधर नंदू अपनी ही घात में था कि ऐयाशी का चस्का तो इसे लगा ही है, किसी तरह इस मरदूद को भी बाबुओं की भाँति अपने चंगुल में फँसा लें। तब क्या, हमीं हम देख पड़ें, और अवध में बड़े-से-बड़े नवाबों से मेरा रुतबा और ठाट कुछ कम न रहे। बस, यही हुमा बेगम इसके लिये भी काफ़ी होगी। इसी नियत से यह अक्सर किसी-न-किसी बहाने लखनऊ में महीनों आकर टिका रहता था, और मुंसिफ़ साहब से रफ़्त-ज़ब्त भी ख़ूब पैदा कर ली थी। यहाँ अपनी ग़ैरहाज़िरी में हकीम साहब से ख़ूब ताक़ीद कर दी थी कि वह बाबुओं के रहन-सहन और चाल-चलन को अच्छी तरह, चौकसी के साथ देखते रहें, क्योंकि उसे यह डर बना ही रहा कि कहीं ऐसा न हो कि चंदू फिर कोई उपाय बाबुओं को ढंग पर लाने का कर गुज़रे, और उसका जमा-जमाया सब खेल उचट जाय। इस बीच यहाँ हकीम साहब से बड़े बाबू साहब की बेहद घिष्ट-पिष्ट बढ़ गई। दिन-दिन-भर, रात-रात-भर बाबू ग़ायब रहते थे। बाबू, हकीम और नंदू, ये तीनों हुमा के ऐसे भक्त हो गए कि रातोंदिन उसकी उपासना में लगे रहा करते थे। पर इसमें मुख्य उपासना बाबू ही की थी, क्योंकि वे दोनो तो मानो भाड़े के टट्टू-से थे, उपासना-

कांड का पूरा दारमदार केवल बाबू ही पर आ लगा था। उधर छोटे बाबू की एक निराली ही गुट्ट क़ायम हो गई, और दोनो मिलकर आवारगी में औवल दरजे के सार्टीफ़िकेट के बड़े उत्साही कैंडिडेट हो गए। हम ऊपर कह आए हैं, बड़े बाबू को चिट्ठी-पत्रियों पर दस्तख़त करना भी बहुत जब्र होता था। कोठी तथा इलाक़ों का सब काम मुनीम, गुमाश्ते और कारिंदों के हाथ में आ रहा। बहती गंगा में हाथ धोने की भाँति सभी अपना-अपना घर भरने लगे। नंदू मालामाल हो गया, क्योंकि हुमा की फ़रमाइशें इसी के ज़रिए मुहैया की जाती थीं, और वहाँ का कुल हिसाब-किताब सब इसी के सिपुर्द था। यद्यपि बाबू की हुमा से रसाई कराने का ख़ास ज़रिया हकीम ही था, पर इसके हाथ केवल ढाँक के तीन पत्ते रहे। कारण इसका यही था कि नंदू ज़ात का बक़्क़ाल रुपए को अपनी ज़िंदगी का सर्वस्व माननेवाला महाटंच बनिया था, रुपए की क़दर समझता था, और यह इसका सिद्धांत था कि मान, प्रतिष्ठा, बड़ाई, शील, संकोच, मुलाहिज़ा सब रुपए के अधीन है; उसमें यदि हानि होती हो, तो उमदा-उमदा सिफ़्तें और बड़े-बड़े गुन भाड़ में झोंक दिए जायँ—

............................अर्थोऽस्तु नः केवलं

येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायः समस्ता इमे।*

इधर हकीम एक तो मुसलमान, दूसरे पुराने समय की अमीरी

---

* हमें केवल धन चाहिए, जिस एक के विना जितने गुण हैं, सब तिनके के समान हैं।

की बू में पगा हुआ था ; घर में भूँजी भाँग भी चाहे न हो, पर ज़ाहिरा नुमाइश नवाबों ही की-सी रहना चाहिए । हकीम साहब, जो दाने-दाने को मुहताज थे, बाबू की बदौलत अमीरों के-से ठाट-बाट और ऐश-आराम में ग़र्क़ हो गए। बाबुओं का सवाई-डेउढ़ा ख़र्च हकीम साहब का हो गया। जोड़ने की कौन कहे, क़र्ज़दार रहा किए। दूसरी बात हकीम साहब के यह भी ज़िहननशीन थी कि हुमा की यह सब कमाई, जो इस समय बाबू को फँसा बेशुमार माल चीर रही है, वह भी तो आख़िर मेरी ही है ; क्योंकि सिवा मेरे हुमा के और दूसरा है कौन। हुमा भी ज़ाहिरा में तो हकीम से कुछ सरोकार न रखती थी, पर भीतर-भीतर दोनो एक ही थे । दोनो की सूरत शकल में भी एक ऐसा मेल था कि ताड़बाज़ों के लिये बहुत कुछ शक करने की गुंजायश थी। रमा अपने दोनो लड़कों के कुढंग से सोने का घर मिट्टी होते देख भीतर-ही-भीतर चूर-चूर थी, खाना-पीना तक छोड़ दिया, और दुबलाकर लकड़ी-सी हो गई थी। सौ-सौ तदबीरें उनके सम्हलने की कर थकी, पर इन दोनो को राह पर आते न देख जहाँ तक हो सका, कारबार सब तोड़ बैठी। बाहर की दूकानें सब उठा दीं, केवल उतना ही मात्र रख छोड़ा, जिसे वह अपने आप सम्हाल सकती थी, और जिसे इसने देखा कि उठा देने से बड़े सेठ हीराचंद के नाम की हलकाई होगी, और उसके स्थापित ठौर-ठौर धर्मशाला, पाठशाला, सदाबर्त इत्यादि का ख़र्च न सट सकेगा। दूसरी बात रमा को यह भी मालूम हुई कि एक

चंदू को छोड़ और जितने लोग पुराने-पुराने इस घर के असरइत थे, सबों ने, किसी को सम्हालनेवाला न पाकर, जिससे जहाँ जितना लूटते-खाते बना, मनमानता लूटा-खाया ; मानो ये लोग सेठ के घराने के बिगड़ने के लिये उलटी माला-सी फेर रहे थे। चंदू अलबत्ता बाबुओं को राह पर लाने की फिकिर में लगा ही रहा। छिपा छिपा रोज़-रोज़ का इन दोनो का सब रंग-ढंग तजवीज़ा किया, और अपने भरसक छल-बल-कल से न चूका, जब-तब आकर रमा को भी ढाढ़स दे जाता था। रमा का मन तो यद्यपि इन लड़कों की ओर से बिलकुल बुझ-सा गया था, पर यह अब तक हिम्मत बाँधे था कि इन दोनो को राह पर एक दिन अवश्य ही लाऊँगा, किंतु जब तक ये गदहपचीसी के पार न होंगे, और नई उमर का तक़ाज़ा ज्वर के समान चढ़ा रहेगा, तब तक इनका ढंग से होना दुर्घट है। उसे विश्वास था कि यदि बड़े सेठ साहब की सुकृत की कमाई है, और वह सिवा भले कामों के मन से कभी किसी बुरी बात की ओर नहीं गए, तो संभव नहीं कि उनकी औलाद पर उस भलाई का असर न पहुँचे। यह कहावत कि "बाढ़ैं पूत पिता के धर्मे" कभी उलटी होगी ही नहीं। चंदू इसी फिकिर में था कि किसी तरह नंदू से बाबुओं का लगाव छूट जाता, तो इन दोनो का ढंग से हो जाना कुछ कठिन न होता। इधर नंदू भी मन में ख़ूब समझे हुए था कि यह पंडित मेरा पक्का दुश्मन है। यह यहाँ का रहनेवाला नहीं, एक अजनबी परदेशी ने ऐसा क़दम जमा रक्खा है कि बड़ी सेठानी बहू मा

जो यह कहता है, वही करती हैं ; नहीं तो जैसा मैंने बाबू को काठ का उल्लू बनाय अपने तावे में कर छोड़ा था, वैसा ही रमा बहू को भी, जो स्त्री की जाति हैं, मुट्ठी में करते क्या लगता था ? इसलिये इस चंदू से मेरे जी में हर तरह पर खटका है, क्या जानिए, यह एक दिन मेरी सब चालाकी बाबू के जी में नक़्श करा दे । ख़ैर, देखा जायगा ; अब तो इस समय हीराचंद की कुल दौलत और राज-पाट सब मेरे हाथ में है, अभी तो जल्द बाबू का वह नशा उतरनेवाला है नहीं ; तब तक में तो मैं कुल दौलत सेठ के घराने की खींच लूँगा ; पीछे से ये दोनों लड़के होश में आ ही के क्या करेंगे ।

सच है, धूर्त और कुटिल लोगों की कार्रवाई का लखना बड़ा ही दुर्घट है । कोई निराला ही तत्त्व है, जिससे वे गढ़े जाते हैं । ऐसों की ज़हरीली कुटिल नीति ने न जानिए कितनों को अपने पेच में ला जड़-पेड़ से उखाड़ डाला । इसलिये जो सुजान हैं, वे ही उनकी कुटिलाई के दाँव पेच से बचे हुए अपनी चतुराई के द्वारा दूसरों को भी अँधियारे गड्ढे में गिरने से रोक लेते हैं ।

---

## तेरहवाँ प्रस्ताव

योऽर्थे शुचिः स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः । *

* जो रुपए-पैसे के मामले में शुद्ध या ईमानदार हैं, वे ही पवित्र या ईमानदार हैं । मिट्टी और जल से बार-बार हाथ धोकर जो अपने को पवित्र करते हैं, वे पवित्र नहीं ।

यह हम अपने पाठकों को प्रकट कर चुके हैं कि हमारे इस उपन्यास के मुख्य नायक दोनों बाबू बहुत-सा फ़िज़ूलख़र्च करते-करते अब संकीर्णता में आने लगे। कहा है—"भक्ष्यमाणो निराधानः क्षीयते हिमवानपि", संचय न किया जाय, और रोज़ उसमें से ले-लेकर ख़र्च हो, तो कुबेर का ख़ज़ाना भी नहीं ठहर सकता, तब बड़े सेठ हीराचंद की संपत्ति कितनी और कै दिन चलती। जिस तालाब में पानी का निकास सब ओर से है, आता एक ओर से भी नहीं, तो उसका क्या ठिकाना। बाबुओं को अब ख़र्च का तरद्दुद हर जून रहा करता था, और इसी चिंता में रहते थे कि किसी तरह कहीं से कुछ रक़म हाथ लगे। अस्तु।

अनंतपुर में नंदू के मकान से सटा हुआ कच्चा-पक्का एक दूसरा घर था। चूना-पोती क़बर के माफ़िक़ यह घर बाहर से तो बहुत ही रँगा-चुँगा और साफ़ था, पर भीतर से निपट मैला, गंदा और सब ओर से गिरहर था। अब थोड़ा इस घर के रहनेवाले का भी परिचय बिना दिए हमारे प्रबंध की शृंखला टूटती है। यह घर बाहर से जो ऐसा रँगा-चुँगा और भीतर श्मशान-सा शून्यागार था, इसका कुछ और ही मतलब था। और, वह मतलब आपको तभी हल होगा, जब आप मालिक मकान से पूरे परिचित हो जायँगे। मालिक मकान महाशय को आप कोई साधारण जन न समझ रखिए। फ़ितनाअंगेज़ी और उस्तादी में यह बड़े-बड़े गुरुओं का भी गुरु था। अनंतपुर के सब लोग इसे उस्तादजी कहा करते थे। हमारे पढ़नेवाले नंदू के चाल-चलन और शील-स्वभाव से भर-

पूर परिचित हो चुके हैं, पर वह चालाकी में इसके पसंगे में भी न था। नंदू इसे चचा कहा भी करता था। सकलगुणवरिष्ठ हक़ीक़त में यह चचा कहलाने लायक़ था। नाम इसका बुद्धदास था, और जैन-धर्म-पालन में अपने को बड़े-बड़े श्रावकों का भी आचार्य समझता था। साँस लेने और छोड़ने में जीव-हिंसा न हो, इस-लिये रातोदिन मुँह पर ढाठा बाँधे रहता था, पर चित्त में कहीं दया का लेश भी न था। पानी चार बार छानकर पीता था, पर दूसरे की थाती समूची-की-समूची निगल जाता था, डकार तक न आती थी। दिन में चार बार मंदिर में जाता था, पर मन से यही बिसूरा करता था कि किस भाँति कहीं से बिना मेहनत, बेतरद्दुद डले-का-डला रुपया हाथ लग जाय। साथ ही यह भी याद रखने लायक़ है कि आप निर्वंसी थे; आगे-पीछे आपके कोई न था; कृपण इतने थे कि चार रुपए महीने में गुज़र करते थे। ज़ाहिरा में दस-पाँच रुपया पास रख घड़ी-दो-घड़ी के लिये टाट बिछाय बाज़ार में जा बैठते और पैसों की सराफ़ी अपना पेशा प्रकट किए थे, पर छिपी आमदनी इसकी कई तरह की ऐसी थी कि उसका हाल कोई-कोई बिरले ही जानते थे। अनंतपुर में तो नंदू-ऐसे दो ही एक इसके चेले थे, किंतु लखनऊ के चालाक और उस्तादों में इसकी धूम थी। भेख छिपाए दो-एक परदेशी इसके फ़न के मुश्ताक़ टिके ही रहते थे। यह अपने को कीमियागर प्रसिद्ध किए था; पढ़ा-लिखा एक अक्षर न था, पर ख़ुशनवीसी में ईश्वर की देन उस पर थी। मानो इस फ़न को यह मा के पेट

से ले उतरा था। किसी भाषा का कैसा ही बदख़त या ख़ुशख़त लेख हो, यह जैसा-का-तैसा उतार देता था। दस रुपए सैकड़ा इसकी उजरत मुक़र्रर थी, अर्थात् दस्तावेज़ वग़ैरह सौ रुपए का हो, तो उसकी बनवाई यह दस रुपया लेता था, दो सौ का हो, तो बीस, यों ही सौ-सौ पर दस बढ़ता जाता था। और बहुत-से फ़न इसे याद थे, पर उन सबों के जिक्र से हमें यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। बुद्धदास शौक़ीन और तरहदारों में भी अपना औवल दरजा मानता था। उमर इसकी ४० के ऊपर आ गई थी; दाँत मुँह पर एक भी बाक़ी न बचे थे, तो भी पोपले और खोड़हे मुँह में पान की बीड़ियाँ जमाय, सुरमे की धज्जियों से आँखें रँग, केसरिया चदन का एक छोटा-सा बिंदा माथे पर लगाय, चुननदार बालाबर अंगा पहन, लखनऊ के बारीक काम की टोपी या कभी-कभी लट्‌टूदार पगड़ी बाँध जब बाहर निकलता था, तो मानो ब्रज का कँधैया ही अपने को समझता था। होंठ बड़े मोटे, रंग ऐसा काला, मानो हब्श देश की पैदाइश का कोई आदमी हो, आँखें घुच्चू-सी, गाल चुचका, डील ठेंगना, बाल खिचड़ी, उस पर ज़ुल्फ़, गरदन कोतह, मुँह घोड़े का-सा लंबा, शैतानी और फ़साद तथा काइयाँपन इसके एक-एक अंग से बरसता था। यह विष की गाँठ अनंतपुर का रहनेवाला न था; थोड़े दिनों से यहाँ आकर बसा था। कहा है—"समानशीलव्यसनेषु सख्यम्" नंदू और यह दोनो एक-से शील-स्वभाव के थे, और नंदू की इससे पटती भी ख़ूब थी, इसलिये अचरज क्या कि उसी ने इसे कहीं

बाहर से बुलाकर अपने घर के पास ही टिका लिया हो। इसे नंदू चचा कहता था, इससे मालूम होता है, कदाचित् कोई घर का रिश्ता भी इससे रहा हो। नंदू भी, जो चालाकी में एकता था, इस घात से इसे और टिकाए था कि इसके दूसरा कोई और था ही नहीं, अंत को इस वज्र कृपण का धन सिवा मेरे कौन पा सकता है! जो हो; एक रात को नंदू ने आकर इसका किवाड़ खटखटाया। इसने चुपके-से आय किवाड़ खोल दिया। दोनो भीतर चले गए, और किवाड़ बंद कर लिया। नंदू बोला—"चचा, बड़े बाबू ने आज आपको उस मामले के लिये याद किया है—आपकी उजरत कौड़ी ऊपर दिलवाऊँगा।" यह बोला—"उजरत की कौन-सी बात है। मुझे तुमसे या बाबू से किसी तरह पर इनकार नहीं।"

---

## चौदहवाँ प्रस्ताव

बहि-बहि मरैं बैलवा, बैठे खायँ तुरंग।

पाठकजन, आप लोगों को याद होगा, हमारे इस क़िस्से के पहले प्रस्ताव का पहला दृश्य एक घुड़सवार था, जो आधी रात के समय काग़ज़ का एक पुलिंदा लिए आया था, और दरवाज़े का फाटक खुलवाय पुलिंदा दे चला गया था। हमारे पढ़नेवालों को अवश्य इस बात के जानने की रुचि हुई होगी कि यह काग़ज़ का पुलिंदा क्या था, और क्यों ऐसा ताबड़तोड़ मँगाया गया।

हम ऊपर कह आए हैं, सेठ हीराचंद का अनंतपुर में एक बहुत पुराना घराना था। हीराचंद से पाँच पुश्त पहले इसके पुरखों में से एक कोई मानिकचंद नाम का, घर से पाँच कोस पर अपने ही नाम का एक गाँव बसाय बाग़, बग़ीचा, कुआँ, तालाव, रमने इत्यादि कई एक रमणीक सजावटों से इस स्थान को अत्यंत मन रमानेवाला कर आप वहीं जाय रहने भी लगा। उपरांत इसके कई एक लड़के-लड़कियाँ, पोते-परपोते हुए, और यह सब भाँति रजा-पुँजा होकर संसार में भाग्यवानी की सीमा को पहुँच गया था ; बल्कि बीच में हीराचंद के घराने की बड़ी अबतरी आ गई थी, यह तो हीराचंद ही ऐसा भाग्यवान् पुरुष हुआ कि पहले से भी अधिक इस घराने को चमका दिया। मानिकपुरवाले सेठों का तो कोई नाम भी न जानता था, पर हीराचंद का विमल यश चहुँ ओर छाया था। जिस समय का हाल मैं लिखता हूँ, उस समय मानिकचंद के घराने में बची-बचाई पुरानी दौलत थोड़ी-बहुत रह गई थी, पर उसका सुख विलसनेवाला कोई न रहा। ७० वर्ष का एक बुड्ढा बच रहा। जैसे किसी हरे-भरे बाग़ के उजड़ जाने पर उसमें कटीले पेड़ का एक ठूँठ बच रहे। मानिकपुर भी उजड़कर क़स्बे से एक छोटा-सा पचास घर का पुरवा रह गया। सिवा इस बुड्ढे के मानिकचंद की लड़कियों के संतान में भी एक आदमी बच रहा था। नाम इसका मिट्ठूमल, मानो नहूसत और दरिद्रता का एक पुतला था। इस बुड्ढे के घर से अलग एक दूसरे

कच्चे मकान में यह रहा करता था। शकल से महा दिहाती ग्रामीण मालूम होता था। न केवल सूरत ही शकल से यह दिहाती था, वरन् शऊर और ढंग भी इसके सब दिहातियों के-से थे। दस-पाँच बिगहे की खेती करता था, और वही इसकी आजीविका थी। कभी-कभी अर्थ-पिशाच वह बुड्ढा भी इसकी कुछ सहायता कर देता था। रिश्ते में वह उसका भानजा लगता था। नाम इस यद्वाच्चित्त कृपण बुड्ढे का धनदास था। धनदास कुछ तो बुढ़ापे के कारण, जब कि और सब इंद्रियाँ शिथिल हो केवल तृष्णा और लोभ ही को विशेष बढ़ा देती हैं, और कुछ इस कारण से भी कि इसकी वारी फुलवारी बिलकुल उजड़ गई थी, ठूँठ-सा अकेला आप ही बच रहा था, लड़के, पोते, नाती, अपनी स्त्री तक को इसने फूँक तापा था, इसलिये इसका जी सब भाँति बुझ गया था, और कभी किसी बात के लिये हौसिला ही नहीं उभड़ता था। साँप-सा खाट बिछाए उसी संदूक़ के पास पड़ा रहता था, जिसमें इसके सब काग़ज़, पत्र, रुपया, पैसा, नोट इत्यादि रक्खे हुए थे। सिवा थोड़ी-सी पुराने फ़ैशन की फ़ारसी के और कुछ पढ़ा-लिखा न था, न इसे कभी सभ्य-समाज में शरीक होने या अच्छे सभ्य लोगों से मिलने का मौक़ा मिला था। बेईमानी या ईमानदारी से जैसे बन पड़े केवल रुपया जमा होता चला जाय, इसी को यह बड़ी पंडिताई, बड़ी चतुराई, बड़ा धर्म समझे हुए था। इस दशा में मनुष्य को उदार भाव कहाँ से आ सकता है। न जानिए कितनों की तो इसने थाती पचा

डाली थी, इन्हीं कारणों से इसके लिये अर्थ-पिशाच की पदवी बहुत सुघटित बोध होती है। ७० वर्ष का हो ही गया था, एक-एक अंग पलित और जीर्ण हो चले थे, रोग-ग्रसित रहा करता था। अचानक एक साथ ऐसा बीमार हो गया कि बिलकुल खाट से लग गया, और मालूम होता था कि दो ही एक दिन में इसका वारा-न्यारा हुआ चाहता है। इसकी बीमारी की ख़बर बाबुओं को पहुँची। ख़बर पाते ही इन दोनो के जी में खलबली पड़ी। इसलिये नहीं कि बुड्ढा बीमार है, चलकर उसकी कुछ सेवा-टहल करें, या दवा-दारू की कुछ फ़िकिर करें, बल्कि इसलिये कि जल्द चलकर जो उसके पास माल-मताल है, उसे जैसे हो अपने क़ब्ज़े में लावें। चलती बार नंदू भी इनके साथ हो लिया। दोनो का चोली-दामन का साथ था। भला, यह क्योंकर बाबुओं को छोड़ अपनी चालाकी से चूकता, और बाबू को भी इसके बिना कहाँ कल पड़ सकती थी। दो-एक दिन तो धनदास बहुत ही बुरी हालत में रहा; लोग अँगुलियों घड़ी और लहमा गिन रहे थे कि इसकी हालत कुछ सुधरने लगी। दो-तीन दिन तो पड़ा रहा, उपरांत बोला भी और कुछ खाने के लिये इसने इच्छा प्रकट की। बाबू इसे चंगा होता देख मन में बड़े उदास हुए, सब उम्मीदें जाती रहीं, और जो बात सोच रक्खी थी, एक भी न हो सकी; पर ऊपर से ऐसी लल्लो-पत्तो और चुना-चुनी करते जाते थे कि धनदास को किसी तरह पर यह विश्वास न हुआ कि यह मेरा अनिष्ट सोच रहा है, और मेरे साथ कुछ खेल खेला चाहता है। इसके बाद भी अपनी

दुरभिसंधि छिपाने को बाबू दो-एक दिन वहाँ रहकर धनदास से बिदा हुए, और नंदू को वहाँ ही छोड़ गए। भीतर-भीतर इशारा तो कुछ और ही था, पर ऊपर से धनदास के सामने नंदू से कहा—"नंदू बाबू, मैं तो अब जाऊँगा, पर तुम चचा साहब की अच्छी तरह फिकिर रखना। देखो, इन्हें किसी तरह की तकलीफ़ न हो। इनके पथ्य और इलाज इत्यादि की तदबीर रखना।" और धनदास से बोला—"चचा साहब, क्या करूँ, मैं बड़ा लाचार हूँ। मेरे न रहने से कोठी तथा इलाक़ों का सब कारबार बंद होगा। मैं नंदू बाबू को छोड़े जाता हूँ, यह मेरे बड़े रफ़ीक़ हैं, आपकी सेवा-टहल की सब फिकिर रक्खेंगे, और किसी तरह की तकलीफ़ आपको न होने पावेगी। मैं घुड़सवार एक हलकारे को छोड़े जाता हूँ, जब आपको किसी बात की जरूरत आ पड़े, तुरंत इसे भेज मुझे इत्तिला देना।" यह कह बुड्ढे को सलाम कर यह वहाँ से बिदा हुआ।

नंदू, जो चालाकी में पूरा उस्ताद था और अपने को इसमें एकता समझता था, ऐसे ढंग से रहा और ऐसी सेवा-टहल की कि धनदास का यह बड़ा विश्वसित हो गया। यहाँ तक कि इसने अपनी ताली-कुंजी सब इसके सिपुर्द कर रक्खी। अपने पुराने नौकरों की भी बात न मान जो यह कहता वैसा ही धनदास करने लगा। एक तो बूढ़ा था, दूसरे बीमारी के कारण चिरचिरा हो गया था। नंदू को यह एक बड़ी हिकमत हाथ लगी कि जब इसे किसी पर झुँझलाते और चिरचिराते देखता, तो इश्तियालक देने की भाँति

दो एक कोई ऐसी बातें कह देता कि इसकी चिरचिराहट और चौगुनी बढ़ जाती थी। जिस पर यह झुँझला उठता था, उसकी मानो शामत आई। और, इस झुँझलाहट में वह चिल्लाता था, रोने लगता था, यहाँ तक कि मूड़ भी पीट डालता था। ऐसे मौक़े पर नंदू को अपनी ख़ैरख़्वाही ज़ाहिर करने का मौक़ा मिलता था। निदान यह बुड्ढा बिलकुल सठिया गया। होश-हवास भी दुरुस्त न रहते थे। मृत्यु के दिन समीप होने के जितने लक्षण होने चाहिए, सब इसमें आ गए। इस प्रकार के कृपण, कदर्य जीवन से जीनेवालों का यही तो परिणाम होता है। जो मानो आदमी के भले-बुरे होने की बड़ी भारी परख है। सुकृती मनुष्य की मरण-अवस्था ऐसी सुख की होती है कि किसी को मालूम नहीं होता कि कब उसके चोला से जान निकल गई ; आनन-फ़ानन पलक भँजते-भँजते शरीर से उसके प्राण की यात्रा होती है। वह दुष्कृती, जैसा यह बुड्ढा था, महीनों तक पड़े अनेक यातना और यंत्रणा भोगते हैं, पर प्राण-वियोग शरीर से नहीं होता।

एक दिन रात को यह करहता-करहता सो गया, और इसके सब पुराने नौकर भी नींद के बस हो गए कि नंदू ने ताली का गुच्छा, जो इसकी तकिया के नीचे रक्खा रहता था, धीरे से खींच वह संदूक़, जिसे धनदास अपना प्राण समझता था, आहिस्ते से खोल काग़ज़ का पुलिंदा उसमें से निकाल लिया, और संदूक़ फिर बंद कर ताली वैसे ही तकिया के नीचे रख दी। इसने पुलिंदा

उसी अहल्कारे को दिया और कहा—"तुम अभी जाकर इस पुलिंदे को बाबू साहब को दे आओ, पर ख़बरदार होशियार रहना, यह बड़े काम का काग़ज़ है, इसमें से कोई भी गिर जायगा, तो बड़ा हर्ज होगा।" अहल्कारा सलाम कर पुलिंदे को अपनी कमर में कस रवाना हुआ। नंदू भी जाकर चुपके सो रहा, पर अपनी इस अभिसंधि में कृतकार्य होने की .खुशी में देर तक इसे नींद न आई, सोचता था—"लाखों की जायदाद माल-मताल अब मेरे बाबुओं को बेखरखसे हाथ लग जायगी, बाबू से चहारुम मेरा ठहर गया ही है, तब क्या हमीं हम कुछ दिनों में देख पड़ेंगे। चहारुम क्या, यह बिलकुल माल मैं अपना ही समझता हूँ, क्योंकि बाबुओं को तो मैंने अपने जाल में फँसा ही रक्खा है। बाबू के पास जो कुछ है, उसके सब कर्ता-धर्ता सिवा मेरे दूसरा है कौन। हा! हा! हा! मैं भी अपने फ़न में क्या ही उस्ताद हूँ, कैसे अपनी ढाँक जमा रक्खी है कि अब बाबू के दरबार में मैं-ही-मैं हूँ। उस उजड्ड पंडित चंदू ने हरचंद चाहा, कितना ही फटफटाया, पर उसकी एक भी दाल न गली। सब तरह पर बाबुओं को मैंने अपनी मूठी में करी तो लिया। छिः! यह पंडित भी अहमक़ों की जमात का एक नमूना देख पड़ा! बदतमीज़ी की यह बानगी है, मानो शऊर और समझ के चश्मे पर बड़ा भारी पत्थर का ढोंका रख दिया गया हो। .खूबी यह कि कौड़ी-कौड़ी मात हो रहा है, फिर भी अब तक अपनी शरारत से बाज़ नहीं आता। मैं भी मौक़ा तजवीज़ रहा हूँ, बचा को ऐसा

फँसाऊँगा कि अब की बार जड़-पेड़ से उखाड़ डालूँगा, और अनंत-पुर में कहीं इसका निशान भी न रह जायगा। मैंने एक बार पहले भी संदूक़ को खोला था, ताकि देखूँ इसमें क्या है, सिवा और चीज़ों के उस पुलिंदे को भी पाया, जिसमें पचास हज़ार के कई क़िता सिर्फ़ नोट के थे। दस हज़ार का एक क़िता तो मैंने अपने लिये अलग उड़ा रक्खा। और भी कई एक दस्तावेज़ उसमें हैं। यहाँ से चलकर मैं सबों को ठीक करूँगा। इसीलिये तो बुद्धदास को अपने घर के पास ही टिका रक्खा है, और सब तरह की नाज़बरदारी उसकी उठा रहा हूँ। ख़ासकर उस वसीयत को दुरुस्त करना है, जिसमें बुड्ढे ने मिट्ठूमल के लिये कुछ इशारा कर दिया है। मिट्ठू-ऐसे खूसट देहकानी को इतनी कसीर रक़म मिलकर क्या होगी, इसे तो हम लोगों के हाथ में आना चाहिए। बाबुओं का रंग-ढंग देख घर की सब रक़म बड़ी सिठानी ने दाब रक्खी। दोनों बाबू मा के मरने के वादे पर क़र्ज़ ले-लेकर इन दिनों अपना काम चला रहे हैं। अब इतनी कसीर रक़म एक साथ मिल जाने से कुछ दिनों के लिये सुबीता हो गया। ख़ैर, देखा जायगा। इसमें शक नहीं, आज मैं महीनों की कोशिश और तदबीर के बाद आख़िर कामयाब हुआ।" इतने में उसे नींद आ गई, और वह सो गया।

---

## पंद्रहवाँ प्रस्ताव

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ;
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति। ( मनुः )

अधर्म करने का फल अधर्मकारी को वैसा जल्दी नहीं मिलता, जैसा पृथ्वी में बीज बो देने से उसका फल बोनेवाले को थोड़े ही दिन के उपरांत मिलने लगता है, किंतु अधर्म का परिपाक धीरे-धीरे पलटा खाय जड़-पेड़ से अधर्मी का उच्छेद कर देता है।

अनंतपुर से आध मील पर सेठ हीराचंद का बनाया हुआ नंदन-उद्यान नाम का एक बाग़ है। हीराचंद के समय यह बाग़ सच ही नंदन वन की शोभा रखता था। सब ऋतु के फल-फूल इसमें भरपूर फलते-फूलते थे। ठौर-ठौर सुहावनी लता और कुंज वृंदावन की शोभा का अनुहार करते थे। संगमरमर की रविशों पर जगह-जगह फ़ौवारे जेठ, वैशाख की तपन में सावन-भादों का आनंद बरसा रहे थे। एक ओर इस बाग़ के बड़ी लंबी-चौड़ी बारहदुवारी थी, जिसमें हीराचंद नित्य अपने काम-काज से सुचित्त हो संध्या को यहाँ आते थे, पंडित, साधु, अभ्यागत तथा गुणी लोगों से यहीं मिलते थे, और अपने वित्त के अनुसार सबों का थोड़ा या बहुत, जो कुछ हो सकता, सत्कार-सम्मान करते थे। अस्तु। हीराचंद की बात उन्हीं के साथ गई, अब उसको गाए गीत के समान फिर-फिर गाने से लाभ क्या?

आगे के दिन पाछे गए, हरि से कियो न हेत ;
अब पछिताए क्या भया, चिड़ियाँ चुन गईं खेत।

जिस फलवंत धरती में अमृत-रसवाले दाखफल और केसर उपजते थे, उसी में काल पाय ऊँटकटारे और अनेक कटैले पेड़ जम आए, तो इसमें अचरज की कौन-सी बात है! कालचक्र की गति सदा एक-सी रहे, तो वह चक्र क्यों कहा जाय—
"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।"

गतः स कालो यत्रास्ते मुक्तानां जन्म वल्लिषु ;
उदुम्बरफलेनापि स्पृहयामोऽधुना वयम्। *

बरसात का आरंभ है। रिमझिम-रिमझिम लगातार पानी की छोटी-छोटी फूही ग्रीष्म-संताप-तापित वसुधा को सुधा-दान के समान होने लगी। काली-काली घटाएँ सब ओर उमड़-उमड़ बरसने लगीं, मानो नववारिद वन-उपवन, स्थावर-जंगम जीव-जंतु-मात्र को बरसात का नया पानी दे जीवनदान से जितने दानी और वदान्य जगत् में विख्यात हैं, उनमें अपना औवल दरजा क़ायम करने लगे। या यों कहिए कि ये बादल ज़ालिम कमबख़्त जेठ माह के ज़ुल्म से तड़पते, हाँपते, पानी-पानी पुकारते जीवों को देख दया से पिघल खिन्न हो आँसू बहाने लगे। नदी-नाले उमड़-उमड़ अपना नियमित मार्ग छोड़ वैसे ही स्वतंत्र बहने लगे, जैसे हमारे इस कथानक के मुख्य नायक दोनो बाबू बेरोक-टोक विवेक के मार्ग को छोड़, शरम और हया से मुँह

---

* "उदुम्बरफलेनापि" के स्थान पर "उदुम्बरफलेभ्योऽपि" पढ़िए। वह समय गया, जब लताओं में मोती पैदा होते थे। अब तो गूलर के भी लाले पड़े हैं।

मोड़, दुस्संग के प्रवाह में बह निकले। विमल जलवाले स्वच्छ सरोवर जिनमें पहले हंस, सारस, चक्रवाक कलध्वनि करते हुए विचरते थे, उनके मटीले गँदले पानी में अब में ढक वैसे ही टर-टर करने लगे, जैसे इन बाबुओं के दरबार में, जहाँ पहले चंदू-सा मतिमान्, सुजान, महामान्य था, वहाँ नंदू तथा रग्घू-सरीखे कई एक ओछे, छिछोरे बाबू को दुर्व्यसन के कीचड़ में फँसाय आप क़दर के लायक़ हुए। सूर्य, चंद्रमा, तारागण सबों का प्रकाश रात-दिन मेघ से ढँप मंद पड़ जाने से जुगुनू कीड़ों की क़दर हुई, जैसा दुर्दैव-दलित भारत की इस आरत दशा में चारो ओर जब अज्ञान-तिमिर की घटा उमड़ आई, तो साधु, सदाचारवान्, सत्पुरुष कहीं दर्शन को भी न रहे ; झूठे, पाखंडी, दुराचारी, मक्कार पुजवाने लगे। दिन में सूर्य का, रात में चंद्रमा का दर्शन किसी-किसी दिन घड़ी-दो घड़ी के लिये वैसे ही घुणाक्षर-न्याय-सा हो गया, जैसा अन्यायी राजा के राज्य में न्याय और इंसाफ़ कभी-कभी विना जाने अकस्मात् हो जाता है। पृथ्वी पर एकाकार जल छा जाने से भू-भाग का सम-विषम-भाव, तत्त्वदर्शी, शांतशील योगियों की चित्तवृत्ति के समान, जाता ही रहा। हिंदुस्तान में बरसात का मौसिम बड़े आमोद-प्रमोद का समझा जाता है, और उस समय, जब इस उन्नीसवीं सदी की आशाइशें और आराम रेल, तार इत्यादि कुछ न थे, सभी लोग बरसात के सबब अपना-अपना काम-काज छोड़ देने को लाचार हो जाते थे। यही कारण है कि जितने तिहवार और उत्सव

सावन-भादों के दो महीनों में होते हैं, उतने साल-भर के बाक़ी दस महीनों में भी नहीं होते। उद्यमी और कामकाजी लोग भी— जिनको विना कुछ उद्यम और परिश्रम किए केवल हाथ पर हाथ रख बैठे रहने की चिढ़ है, और एक क्षण भी ऐसा व्यर्थ नहीं गँवाया चाहते, जिसमें वे अपने पुरुषार्थ का कुछ नमूना न दिखलाते हों—वर्षा-ऋतु में शिथिल और ढीले पड़ जाते हैं, तो आवारगी और व्यसन के हाथ में अपने को सौंपे हुए इन दोनो बाबुओं का क्या कहना ! जिनको हरदम कोई नई दिल्लगी, नए शग़ल की तलाश रहती है। मसल है "एक तो तित लौकी, दूजे चढ़ी नीम"—

कपिरपि च कापिशायन-
मदमत्तो वृश्चिकेन संदष्टः;
अपि च पिशाचग्रस्तः
किम्ब्रूमो वैकृतं तस्य। *

रईस और प्रतिष्ठित लोगों में बरसात के दिनों में बाहरी और बाग़-बग़ीचों में आमोद-प्रमोद का आम दस्तूर हो गया है। सुबीतेवाले सभी अपने इष्ट-मित्रों को साथ ले बहुधा बग़ीचों में जाय नाच-रंग, खाना-पीना दो-एक बार अवश्य करते हैं। ये दोनो बाबू तो जब से बरसात शुरू हुई, तब से रातोदिन बग़ीचे ही में जा रहे, कभी आठवें-दसवें घड़ी-दो घड़ी के लिये घर

* एक तो बंदर, दूसरे शराब के मद में मतवाला, तीसरे बीछी से डसा हुआ, चौथे पिशाच से ग्रसित, ऐसे की दशा का क्या कहना।

आते थे। एक दिन साँझ हो गई थी, घटा चारों ओर छाई हुई थी; राह-बाट कुछ नज़र न पड़ती थी, बग़ीचे के बाहर खेतों की मेंड़ पर ठौर-ठौर खद्योत-माला हरी-हरी घासों पर हीरा-सी चमक रही थी; छिन-छिन पर गरजने के उपरांत काली-काली घटाओं में दामिनी क्रोधित कामिनी-सी दमक रही थी; सब ओर सन्नाटा छाया हुआ था; केवल नववारिद-समागम से प्रफुल्ल भेक-मंडली नाऊ की बरात के समान सब अलग-अलग ठाकुर बने टर-टर ध्वनि से कान की चैलियाँ झार रहे थे। एक ओर झींगुर अलग अपनी वाचाट वक्तृता से दिमाग़ चाटे डालते थे। पेड़ के पत्तों पर गिरने से वर्षा के जल का टप-टप शब्द भी सुनाई देता था। कभी-कभी पेड़ पर बैठे पखेरुओं का ओदे पंख झारने का फड़-फड़ शब्द कान में आता था। बारह दुवारी भीतर-बाहर सजी और झाड़-फ़ानूसों से आरास्ता थी; रोशनी की जगमगाहट से चकाचौंधी हो रही थी; जशन की तैयारी थी। नंदू, हुमा और हकीम, तीनो बैठे प्याले पर प्याला ढलका रहे थे। दोनो बाबुओं की हुस्न-परस्ती में धूम थी, इसलिये तमाम लखनऊ और दिल्ली के हसीन यहाँ आ जुटे थे।

बुद्धू पाँड़े अफ़ीम के झोंक में ऊँघता तलवार की मुठिया हाथ में कस के गहे डेहुड़ी पर बैठा हुआ मानो बर्राय रहा था—"कहाँ-कहाँ के चौपटचरन इकट्ठे भए हन, अस मन होत है कि इन हरामख़ोरन का अपन बस चलत तो काला पानी पठै देतेन। हाय! यह वहै बाग और बारहदुवारी अहै, जहाँ इन-

हिन बरसात के दिनन मा नित्य बेद-पाठ औ वसंत-पूजा होत रही। अनेकन गुनी जनन के भीर-की-भीर आवत रही, औ बड़े सेठ सबन केर पूजा-सम्मान करतु रहे, तहाँ अब भाँड़, भगतिए, रंडी-मुंडी पलटन-की-पलटन आय जुरे हैं। एक बार एक मुसलटा बारहदुवारी के भीतर घुसि गवा रहा, तब बड़े सेठ साहब सगर बारहदुवारी धोआइन रहा, तहँ अब निरे मुसलमानै-मुसलमान भरे हैं। न-जानै इन दोनों बबुअन का का ह्वै गवा। नंदुआ का सत्यानास होय, कैस जादू कै दिहिस है कि चंदू महराज औ सेठानी बहू हजार-हजार उपाय कै थकीं, कउनिउ भाँति दोनों बाबू राह पर नहीं आवत। वा दिना बाबू बुद्धदास का बुलवाइन रहा, हम रात के वहिके घर गइन रहा, पर एहका कुछ भेयाद न खुला, ओकर बाबू से गिष्ट-पिष्ट अच्छी नहीं। ऊ तो बड़ा कजाक और जालिया है।" हमने अपने पढ़नेवालों को इस सच्चे स्वामिभक्त का परिचय एक बार और दिलाना इसलिये उचित समझा—कि यह मनुष्य भी हमारे इस क़िस्से का एक प्रधान पुरुष है; यह आगे बड़ा काम देगा, इसलिये इसे हमारे पाठक याद रक्खें।

अब और एक नए आदमी का परिचय यहाँ देना मुनासिब जान पड़ता है, क्योंकि ऐसे दो-एक और लोगों को बिना भरती किए हमारे कथानक की शृंखला न जुड़ेगी। वयक्रम इस पुरुष का ३५ और ४० के भीतर था, नाम इसका पंचानन था। पंचानन के जोड़ का दिल्लगीबाज़ और रसीली तबियत का

आदमी कम किसी ने देखा या सुना होगा। मनुष्य चाल-चलन का किसी तरह बुरा न था, बल्कि चंदू-सरीखे शुद्ध-चरित्र की मैत्री के भरपूर लायक़ था, और कसौटी के समय चाल-चलन की शिष्टता भी इसमें चंदू ही के टक्कर की थी, इसी से चंदू से इसकी पटती भी थी, और अनंतपुर की छोटी-सी बस्ती में दोनों का घर भी एक ही जगह, वरन् सटा हुआ था। दोनों के घर के बीच केवल एक दीवार-मात्र का अंतर था। गंभीरता या संकोच का यह जानी दुश्मन था। मुंसिफ़ी तक की मुख़्तारी एक मामूली ढर्रे पर कर लेना, जो कुछ मिले, उतने ही से अपने लड़के-वालों को खाने-पीने से सब भाँति प्रसन्न रखना, 'न ऊधो के देने, न माधो के लेने' और साँझ को निश्चित लंबी तान सो रहना, केवल इतने ही को अपने जीवन का सार समझता था। अच्छा खाने, अच्छा पहनने का इसे हद से ज़ियादह शौक़ था, तेहवार और कचहरी में तातील का बड़ा मुश्ताक़ था। किसी के यहाँ ज़ियाफ़त में शरीक होने का इसे बड़ा हौसिला था। किसी के यहाँ कुछ काम पड़ने पर दावत खाना या उसको बेवक़ूफ़ बनाय ज़ियाफ़त दिलवाने में यह बहुत कम फ़र्क़ समझता था। सारांश यह कि इसका मुख्य उद्देश्य यही था कि जिसमें कुछ हँसी व दिलबहलाव हो, वही करना। हर हाल में ख़ुश रहना और दूसरों को ख़ुश रखना इसका सिद्धांत था। इसी से क्या छोटे, क्या बड़े, सब उमर के लोगों से यह मिलता था, और उचित तथा योग्य बरताव से सबों को प्रसन्न रखता था। जिस तरह अपने हम-उमरवालों से

मिलता था, उसी तरह कम उमरवाले लड़कों से भी मिल उनको राज़ी कर देता था। वरन् इसके मसख़रेपन से बूढ़े लोग भी ख़ुश रहते थे, और कोई इसे बुरा न कहता था। यह बात तो कभी इसके मन में आती ही न थी कि ऊँचे पद से और रुपए के कारण मनुष्य की प्रतिष्ठा और इज़्ज़त में कुछ अंतर आ सकता है। इसलिये जहाँ कहीं कुछ चुटकी लेने का अवसर मिलता था, यह विना कुछ बोले नहीं रहता था, चाहे वह आदमी कौड़ी-कौड़ी का मुहताज हो या करोड़पती क्यों न हो। संसार में यदि किसी से दबता था, या किसी की बु.ज़ुर्गी करता था, तो केवल चंद्रशेखर की। पंचानन के मन में चंद्रशेखर का ऐसा रोब जमा हुआ था, जिसे ख़याल कर अचरज होता था। यद्यपि चंदू से भी कभी-कभी यह दिल्लगी छेड़ बैठता था, किंतु दो-एक गंभीर विचार की भावना कभी, देर के लिये इसके मन में अवकाश पाती थी, तो चंदू ही के बार-बार की नसीहत और उपदेश से! मसख़रापन का बर्ताव यह साधारण रीति पर सबके साथ रखता था, किंतु मन में सोचता था कि हम बड़े गौरव के साथ लोगों से बर्तते हैं। इस तरह यह लोगों के बीच अपने को खिलौना बनाए था सही, पर सबों का सेवक और सबसे छोटा अपने को मानता था। सर्व-साधारण में यह परोपकारी विदित था, और अपने इख़्तियार-भर जो किसी का कुछ भला हो सके, तो उससे मुँह नहीं मोड़ता था। घमंड का इसमें कहीं लेश भी न था, सूरत भी भगवान् ने इसकी ऐसी गढ़ी थी कि इसे देख

हँसी आती थी। बड़ी लंबी नाक, नीचे को झुके हुए छोटे-छोटे मोछें, पस्त क़द, पेट के ऊपर दोनो खड्डेदार छाती—जैसा किसी गहरी नदी के ऊपर आगे की ओर झुका हुआ कगारा हो। बाल सुफ़ेद हो चले थे, पर ज़ुल्फ़ सदा कतराए रहता था। अस्तु, आज के जलसे में यह भी शरीक था। वहाँ हुमा को देख वह बोला—"बाबू ऋद्धिनाथ, तुमने ऐसा चुंबक पत्थर अपने पास रख छोड़ा है कि किस पर इसकी कशिश का असर नहीं पहुँच सकता? ठीक है, ऐसी सोने की चिड़िया आपके हाथ लगी है, तभी तो आपने हम लोगों को बिलकुल भुला दिया।"

ऋद्धिनाथ—ख़ैर, गड़े मुरदे न उखाड़िए। बतलाइए, अब आप लोगों की क्या ख़ातिरदारी की जाय (जूही का एक-एक गजरा सबों के गले में छोड़)? चलिए, आप लोगों को बाग़ की सैर करा लावें (एक बड़ी भारी संदूक़ दो कुलियों के सिर पर लदाए हुए रघू को दूर से आता देख)। लाओ-लाओ, अच्छे वक़्त से लाए।

सब लोग—"यह क्या है? यह क्या है?" (संदूक़ खोल सब लोग एक-एक बाजा उठा लेते हैं)—वाह रे! रघू महराज, अच्छी जून यह तुहफ़ा तुम लाए, और क्या हिसाब से लाए कि डेढ़ कौड़ी बाजे और यहाँ डेढ़ ही कौड़ी बाजे के बजवइए भी।

नंदू—(ऋद्धिनाथ से) बाबू साहब, हमने कहा था, बाजे हरगिज़ ज़ियादह न होंगे, बल्कि हुमा का हाथ फिर भी बाजे से ख़ाली ही रहा।

पंचानन—अच्छा, आप लोग अपना-अपना बाजा ले चुके हों, तो हम 'प्रोपोज़' करते हैं कि हुमा हम सब बाजा बजानेवालों की बैंडमास्टर की जाय।

नंदू—मैं आपके इस प्रोपोज़ल को सेकंड करता हूँ। (मन में) हुमा या ये दोनों बाबू, सब इस वक़्त मेरे क़ब्ज़े में हैं। हुमा में हुमापन पैदा करनेवाला भी मैं ही हूँ। आज यह पुराना चंडूल पंचानन आ फँसा। यह उस गँवार पंडित का जिगरी दोस्त है। यह भी मेरे दल में आज आ शरीक हुआ, इस बात की मुझे बड़ी ख़ुशी है। बुद्धदास के ज़रिए मैंने जो कार्रवाई की थी, उसमें भी मैं भरपूर कामयाब हुआ। सच है, ऐब करने को भी हुनर चाहिए।

बुद्धू पाँड़े अफ़ीम के झोंक में एकबारगी चौंक पड़ा, और अपने सामने पुलिस के दो आदमियों को बातचीत करते देख चौकन्ना हो पूछने लगा—"तुम कौन? किसके पास आए हो?"

पुलिस—सेठ हीराचंद के वलीअहद ऋद्धिनाथ व नंदू व बुद्धदास तीनों कहाँ हैं? उनके नाम वारंट है, तीनों फ़ौजदारी सिपुर्द हुए हैं। साथ हथकड़ी के तीनों को अदालत में हाज़िर करने का हुक्म हमें है।

बुद्धू (मन में) हमने तो पहले सोचा था कि चौपटहों का साथ हमारे बाबू को किसी दिन ख़राब करेगा। जो बात आज तक इस घराने में कभी नहीं हुई, उसकी नौबत पहुँची, तो अब

बाक़ी क्या रहा। सच है, बुरे काम का बुरा अंजाम। देखिए, आगे अब और क्या-क्या होता है ?

---

## सोलहवाँ प्रस्ताव

छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।*

मेरे मन कुछ और है; कर्ता के कुछ और।

सब लोग अपनी-अपनी पसंद के माफ़िक स्वच्छंद आमोद-प्रमोद में लगे हुए थे। एक ओर प्याले पर प्याला चल रहा था, दूसरी ओर पौ-छक्के का शग़ल शुरू था कि अचानक इस ख़बर के जाहिर होते कानोकान सब आपस में कानाफूसी करने लगे। एकबारगी सन्नाटा छा गया। नंदू का चेहरा ज़र्द पड़ गया। वहाँ से निकल जाने की तदबीर सोचने लगा। दोनों बाबू भी घबरा गए, और इस ख़याल में थे कि नंदू उनका दिली ख़ैरख़्वाह है, अपने ऊपर सब ओढ़ लेगा, उन दोनो पर आँच न आवेगी। इधर नंदू इस फ़िकिर में लगा कि जिस इलज़ाम पर वारंट आया है, वह इन बाबुओं पर थाप दें, तो हम साफ़ बरी रहें। सच है, "आपत्सु मित्रं जानीयात्" और इसी यत्न में लगा कि किसी तरह से चंपत हों। अस्तु, और सब लोग किसी-न-किसी बहाने वहाँ से खिसकने लगे, पर नंदू की कोई घात निकलने की नहीं लगती थी। इतने में घर से एक दूसरी ख़बर आई—"सरस्वती बहुत

---

* दुख में और भी दुख पड़ते हैं।

बीमार हो गई है, उलटी साँस चल रही है, जल्दी घर चलो।"

छोटे बाबू की दो वर्ष की लड़की सरस्वती दोनो बाबुओं को बहुत हिली थी। घर में कोई छोटा लड़का न रहने से सब उसे बहुत प्यार करते थे, और वह घर-भर की खिलौना थी। बाबू को दोचंद तरद्दुद में पड़े देख सब लोग बड़ी फिकिर में हुए, किंतु नंदू के आकार और चेष्टा से मालूम होता था कि इसे बाबुओं के साथ कोई सहानुभूति नहीं है, केवल अपने बचाव के प्रयत्न में अलबत्ता लग रहा है। पंचानन, जो कभी बाबुओं के किसी जलसे और नाच-रंग में आज तक शरीक न हुआ था, और बाबू के दिली दोस्तों से इसकी ज़ियादह रब्त-ज़ब्त न रहने से अच्छी तरह उनके गुप्त चरित्र और छिपे चाल-चलन से वाक़िफ़ न था, नंदू की उस समय की रुखाई से अचरज में आया। यद्यपि पंचानन तरद्दुद और फिकिर से कोसों दूर हटता था, पर इस समय बाबुओं को अत्यंत उदास, व्याकुल और चिंतामग्न देख यह भी सन्नाटे में आ गया। कुछ इस कारण भी कि चंदू का, जिसे यह सबसे अधिक मानता था, सेठ के घराने से बहुत लगाव समझ दोनो के साथ इसे हमदर्दी हो आई; नंदू पर इसे क्रोध भी आया कि यह धूर्त नमकहराम इस मुसीबत और चवकुलिश से किसी तरह रिहाई न पा सके, और इसके फँसाने की फिकिर में हुआ। पंचानन मुंसिफ़ी तक की वकालत की सनद हासिल किए था, इसलिये क़ानून की बारीकियों को भी भरपूर समझता था। नंदू

को बातों में फँसाय बाबुओं को आँख के इशारे से बाग़ के पिछवाड़े की खिड़की से बाहर निकाल दिया।

पंचानन—( नंदू से ) बाबू नंदलाल, आप-ऐसे सयाने कौआ इन बगुलों के दल में कैसे फँसे ? आपको तो अपनी चालाकी का दावा था। "वाह, क्या ख़ूब फँसा है यह पुराना चंडूल ; लगी गुलशन की हवा, दुम का हिलाना गया भूल !" सच है, सयाना कौआ ज़रूर ग़लीज़ खाता है। ख़ैर, अब बतलाओ, उस्तादों को क्या नज़र करोगे, हम इसमें पैरवी कर तुम्हें अभी इस मुसीबत से रिहा करें।

नंदू—आप यक़ीन न लावेंगे, मेरा इसमें कोई क़ुसूर नहीं है, इन बाबुओं ने मुझे भी फँसाय ख़राब किया।

पंचानन—जी। आप ठीक कह रहे हैं। भला, किसे शामत सवार है कि आपकी बात पर यक़ीन न लावे। हम क्या, हमारे बाप-दादा अपने-अपने वक़्त में सब आप पर यक़ीन लाए हुए थे। वल्लाह, ऐसे नए नबी पर जो यक़ीन न लाया, तो कौन दूसरे पैग़ंबर आवेंगे, जो हम-ऐसे गुनहगारों का गुनाह माफ़ करेंगे। हाल में हमारे प्रपितामह की भेजी हुई हमारे नाम की एक चिट्ठी आई है कि बाबू नंदलाल जो कहें, उसमें एक शोशा भी ग़लत न समझो। तब भला, मुमकिन है कि आपकी बात का यक़ीन न करें ?

नंदू—आप तो ठट्ठों में उड़ाते हैं, यह मौक़ा दिल्लगी का नहीं है।

पंचानन—जी नहीं, दिल्लगी की इसमें कौन-सी बात है, उस वक्त दिल्लगी अलबत्ता थी, जब ख़ूब गुलछर्रे उड़ते थे। ख़ैर, बाबुओं के बचाव की सूरत बिलफ़ैल किसी-न-किसी ढंग से हो जायगी। बाबू दोनो चंपत भी हो गए, अब आप अपनी कहिए।

नंदू—( सब ओर देख ) ( स्वगत ) हाय ! बाबू क्या चले गए, तो अब यह सब बला हमीं को सहना पड़ेगी। पंचानन चालाकी में हमसे भी दूना ज़ाहिर होता है, और हमको फँसाने के लिये इसने मन में तय कर लिया है, तो अब हमारा निस्तार कठिन मालूम होता है। ख़ैर, अब इसी की ख़ुशामद करें। ( प्रकट ) बाबू पंचानन, आप चाहें, तो मुझे भी यहाँ से निकाल सकते हैं, मैं आपका बड़ा एहसानमंद हूँगा।

पंचानन—आप कुछ संदेह न करें, मैं आपकी भरपूर ख़बर लूँगा ( वारेंटवालों को बुलाकर ) बाबू ऋद्धिनाथ तो यहाँ नहीं हैं, और यहाँ आए भी नहीं। बाबू नंदलाल अलबत्ता हाज़िर हैं, इन्हीं से बुद्धदास का भी पता आपको लग जायगा। ( नंदू से ) नंदलाल बाबू, अब कहिए, जो कुछ आपको कहना हो ; बुद्धदास की गिरफ़्तारी के ज़िम्मेवार भी आप ही हैं। ( दारोग़ा से ) दारोग़ा साहब, बाबू नंदलाल बड़े रईस हैं, इनके साथ किसी तरह की रियायत हो सकती हो, तो मैं सिफ़ारिश करता हूँ, कर दीजिए। क्यों जी बाबू नंदलाल, यही आपका मतलब था न कि मैं अपनी ओर से आपके लिये न

चूकूँ ? ख़ैर, मैं अब जाता हूँ, दारोग़ा साहब और आप दोनो आपस में यहाँ निपटते रहिए।

---

## सत्रहवाँ प्रस्ताव

अपना चेता होत नहिं, प्रभु-चेता ततकाल।

पंचानन नंदू को उसी बाग़ में पुलिस के दारोग़ा से मिलाय आप चंपत हुआ। दारोग़ा अपने ढंग पर था कि इससे कुछ पुजावें भी, और बात-ही-बात में इससे कबुलवा भी लें कि "मैं क़ुसूरवार हूँ।" इधर नंदू अपने ढंग पर था कि दारोग़ा को ज़रा भी उस बात की टोह न लगे, जिसके लिये वारेंट आया है, और फँसें, तो हम और बाबू दोनो इसमें शामिल रहें। बाबू भी शरीक रहेंगे, तो मुक़द्दमे की भरपूर पैरवी की जायगी। मैं अकेला पड़ गया, तो बेमौत की मौत मरा।

नंदू—( मन में ) पंचानन का यहाँ से चला जाना मेरे हक़ में निहायत मुज़िर हुआ। बेशक मैंने ग़लती की, जो इसे अपनी जमात में शरीक किया। मैंने कुछ और सोचा, यहाँ कुछ और ही बात हो गई। यह तो मैं जानता था कि यह उसी चंदू का दोस्त है, लेकिन मैंने समझा कि यह ठठोल, दिल्लगीबाज़, मुफ़्त-ख़ोरा है; हमेशा अपने को ख़ुश रखना, किसी दूसरे को फँसाय दिल्लगी देखना और हमेशा आराम से ज़िंदगी काटना इसका मक़ूला है। इसी से मैंने अपनी जमात में इसे बुलाया भी, पर

इस वक़्त की कार्रवाई से मैं इसे पहचान गया। यह चंदू का निहायत सच्चा दोस्त है। चालाक तो पंचानन बेशक है, किंतु बड़ा खरा, बेलौस और सच्चा आदमी है। जान पड़ता है, यह मेरे आमालों को जानता है, क्योंकि अब मैं ख़याल करता हूँ, तो इसे छनक मेरी ओर से तभी से थी, जब से इसने यहाँ क़दम रक्खा। क्या तअज्जुब यह वारंट भी चंदू और पंचानन दोनों की साँट में आया हो। ख़ैर, यहाँ तो मैं इस मरदूद दारोग़ा से किसी भाँति निपटे लेता हूँ; पर मेरे घर पर मेरी ग़ैरहाज़िरी में ये पंचानन और चंदू, दोनों मिल कोई फ़साद बरपा करेंगे कि मुझे ज़रूर फँस जाना पड़ेगा। बुद्धदास का भी नाम इस वारंट में है, उसे बिलकुल इसकी ख़बर नहीं है, उसको भी चंदू तके हुए हैं। बाबू को तो वह किसी-न-किसी तदबीर से बचा लेगा, यह मुसीबत मुझे और बुद्धदास, दोनों को भुगतना पड़ेगी। ख़ैर, तो अब इसे टटोलें; देखें यह किसी तरह मेरे चंगुल में आ सके, तो बहुत अच्छा हो। (प्रकाश) हुज़ूर, मैं ग़रीब आदमी हूँ, और सब तरह पर बेक़ुसूर हूँ, मैं तो जानता भी नहीं, यह क्या बात है। हाँ, अलबत्ता इन बाबुओं का मेरा दिन-रात का साथ है। ख़ैर, अब मेरी इज़्ज़त हुज़ूर के हाथ है, मुझे आपकी ख़िदमत करने में भी कोई उज़्र नहीं है। मेरी जैसी औक़ात है, बाहर नहीं हूँ।

दारोग़ा—(मन में) मैं इस बदमाश को ख़ूब जानता हूँ। इसमें शक नहीं, इन बाबुओं को इसी ने ख़राब किया है।

बाबुओं को क्या, इसने न जानिए कितने रईसों को बिगाड़ डाला ! इस मूँजी को तो मैं बहुत दिनों से तके था। कई बार मेरे चंगुल में आया, पर अपनी चालाकी से बचता चला गया। अच्छा, पहले इसे टटोलें तो, इसमें कहाँ तक दम है। मुझे पूरा विश्वास है, यह सब शरारत इसी की है। पर तो भी इससे पता लग जायगा कि इन बाबुओं की कहाँ तक इसमें दस्तंदाज़ी है, और कौन-कौन लोग इसमें शरीक हैं। मैंने उस हैरत-अंगेज़ बुद्धदास की भी फ़िकिर कर रक्खी है। सेठ हीराचंद की शराफ़त का ख़याल कर इन बाबुओं पर मुझे भी रहम आता है, पर इन बदमाशों को तो हरगिज़ न छोड़ूँगा। (प्रकाश) कहिए, आप क्या कहते हैं। इज्ज़त तो इस नाज़ुक ज़माने में, मैं हूँ या आप हों, बची रहना ख़ुदा के हाथ में है। इसलिये अक़्लमंद लोग फूँक-फूँक पाँव रखते हैं। मसल है 'साँच को आँच क्या ?' अगर आप इसमें हैं नहीं, तो डर किस बात का ? 'कर नहीं, तो डर क्या ?' अदालत इंसाफ़ के लिये है, वहाँ दूध-का-दूध, पानी-का-पानी छान-बीन अलग-अलग कर दिया जाता है। आप बेफ़िकिर रहें, क़ुसूर नहीं किया, तो तुम्हारा कुछ न होगा।

नंदू—जी हाँ, माफ़ कीजिए, आपकी बात कटती है। अदालत में इंसाफ़ होता है, यह आप नाहक़ कह रहे हैं। उलटे का सीधा, सीधे का उलटा वहाँ हमेशा होता है। इंसाफ़ तो ऐसा ही कभी साज़नादिर होता है। दूसरे यह कि अदालत तो रुपए की है। अदालत ही पर क्या, रुपए से क्या नहीं होता। ख़ैर, हुज़ूर

से मैं तक़रीर नहीं किया चाहता, आप जो कहें, मैं उसे अंगीकार किए लेता हूँ।

दारोग़ा—( मन में ) बुराइयों के करने में इसका जहबा खुला है। अदालत ऐसे-हो-ऐसों की करतूत से बिगड़ती जाती है। अक्सर रुपए के ज़ोर से यह अब तक बचता चला आया, इसी से इसके दिमाग़ में यह बात समाई हुई है कि अदालत रुपए की है। ख़ैर, तुम बचा हमीं से ठीक लगोगे। ( प्रकट ) "मुझे यक़ीन कामिल हो गया कि तुम ज़रूर इसमें क़ुसूरवार हो, वह कोई दूसरा ख़फ़ीफ़ मामला रहा होगा, जब तुम रुपए के ख़र्च से बच गए। जानते हो, यह कैसा टेढ़ा मुक़द्दमा है? जनाब, ये जाल के मुक़द्दमे हैं, इसमें चौदह और डामिल की सज़ाएँ हैं। ऐसे-ऐसे गंदे ख़यालों को दूर रखिए कि अदालत में उलटे का सीधा और सीधे का उलटा होता है। अदालत इंसाफ़ के लिये है। ऐसे लोगों ने, जैसे आप हैं, अलबत्ता अदालत को बदनाम कर रक्खा है।"

चौदह और डामिल का नाम सुन इसका चेहरा ज़र्द पड़ गया, नस-नस ढीली हो गई। जो समझे था कि मैं अपनी चालाकी से बच जाऊँगा, और पुलिस को भी अपना तरफ़दार कर लूँगा, वे सब उम्मीदें जाती रहीं, गिड़गिड़ाकर बोला—"अच्छा, तो अब मेरे निस्तार की क्या सूरत हो सकती है? आप निश्चय जानिए, मैं बेक़ुसूर हूँ, बाबू का मेरा दिन-रात का साथ है, इससे आपको मेरी ओर भी शक है, और मैं भी ख़राबी में पड़ता हूँ।"

दारोग़ा—जी हाँ, ठीक है, आप बिलकुल बेक़सूर हैं। तुम समझते हो, मेरे आमाल छिपे हैं। जनाब, आप ही ने बाबू को भी ख़राब किया। आप-ऐसे लोगों का ऐसे-ऐसे मुक़द्दमों से निस्तार होना मानो आवारगी और बुराई को फ़ारिग़ पाने के लिये इख़्तियालक देना है। अच्छा, आप तो अब रवाना हों, उन दोनो की भी फ़िकिर की जायगी। नक़ीअली! लो, तुम इन्हें ले चलो, मैं अब बाबू और बुद्धदास के लिये जाता हूँ। ख़ैर, बाबू को तो मैं जानता हूँ, बुद्धदास का पता क्योंकर लगाऊँ? बाबू नंदलाल, आप बतला सकते हैं, बुद्धदास कहाँ मिल सकेगा? मैं समझता हूँ, बुद्धदास का नंबर तुमसे बहुत चढ़ा-बढ़ा है, बल्कि उसी के भरोसे तुम्हें भी ऐसे-ऐसे कामों के लिये हिम्मत होती है।

नंदू—मैं सच कहता हूँ, बुद्धदास से मुझे कोई सरोकार नहीं है। सिर्फ़ इतना ही कि वह भी कभी-कभी बाबू साहब के यहाँ आया-जाया करता है। मुझे तो यह ख़बर नहीं है कि वह कौन-सा काम है, जिसके लिये आप मुझे और बुद्धदास को इस वारंट में गिरफ़्तार करते हैं।

दारोग़ा—जी हाँ, आप कुछ नहीं जानते, आप तो कोई मुनरिख हैं। ख़ैर, मुझे इससे क्या ग़र्ज़ है, मुझे तो अदालत के हुक्म का तकमीला करने से ग़र्ज़ है। आप वहीं जाकर अपनी सफ़ाई कर लेना। लो, इसके हाथ में हथकड़ियाँ छोड़ इसे ले जाओ, मैं अब उन दोनो की तलाश में जाता हूँ।

---

## अठारहवाँ प्रस्ताव

पानी में पानी मिलै, मिलै कीच में कीच ।

सवेरे की नमाज़ से फ़ारिग़ हो अफ़ीम के नशे के झोंक में ऊँघते हुए कोतवाल साहब कुर्सी पर बैठे सोच रहे हैं—कोतवाली का भी क्या ही नाज़ुक काम है। उधर शहर के आवारा और बदमाशों को दाव में रखना और उनके ज़रिए मतलब भी निकालना, इधर रईसों पर भी चाप चढ़ाए रहना, ऐसा कि जिसमें कोई उभड़ने न पावे। जज से मजिस्ट्रेट तक सबको अपनी कारगुज़ारी से ख़ुश रखना, और उनके ख़याल में सुर्ख़रुई हासिल किए रहना कितना मुश्किल काम है। सुबह से शाम तक ऐसे-ऐसे पेचीदह झगड़े आ पड़ते हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। उस दिन उस जौहरी के दस हज़ार के जवाहिरात उड़ गए। मुझे मालूम है, जिन लोगों का यह काम है। पता भी मैंने लगा लिया है, पर जौहरी मरदूद बड़ा कज़ाक काइयाँ है, एक झंझी नहीं गलाना चाहता और बातों-ही-बातों में काम निकालना चाहता है। मैंने सोच रक्खा है, आधे पर मामिला तय करेगा, तो ख़ैर बेहतर ; नहीं, बचा कुल से हाथ धो बैठेंगे। ५०० रुपए रोज़ बिना पैदा किए दातुन करना हराम है। अच्छा, फिर हमारा गुज़ारा भी तो किसी तरह होना चाहिए। बड़े-बड़े नवाबों का जो ख़र्च न होगा, वह हम अपने ज़िम्मे बाँधे हैं। १० रुपए रोज़ बी बन्नी को ज़रूर ही चाहिए ; क़िले-सी बड़ी भारी इमारत जुदा

छोड़े हुए हैं, जिसमें लक्खों रुपए सोख गए। हमनिवाले दस-पाँच दोस्त दस्तरख़ान के शरीक न हों,-तो नाम में फ़र्क़ पड़े। चार-चार फ़िटन, कोतल सवारी के घोड़े वग़ैरा का सब ख़र्च कहाँ से आवे, आख़िर अल्लाहताला को हमारी भी तो फिकिर है। रोज़ नया शिकार न भेजे, तो इतना बड़ा अटाला कैसे पार हो—( पीनक से जग ) कोई है। अबे ओ फ़हमुआ ! ( थोड़ा ठहर ) अबे ओ फ़हमुआ ! ( थोड़ा ठहर ) अबे ओ फ़हमुआ ! मर गया क्या ?

फ़हमुआ—हाँ साहब, हे आएउँ ( आँख मींजता हुआ नींद में भरा आता है )।

कोतवाल—हरामज़ादा अभी तक पड़ा-पड़ा सोता ही था; तू अपनी इस आदत से बाज़ न आएगा। बीसों मरतबा कह चुके। तुझे होश नहीं आता, समझे रह, खाल खिंचवा लूँगा।

फ़हमुआ—हजूर माफ़ करें, कसूर भा, अब आगे से ऐसा न करिहौं। ( हुक़्क़ा भर सामने लाय रख देता है )

( कोतवाल हुक़्क़े की निगाली होठों के नीचे दाब पीनक में आय फिर मन में ) इसमें कुछ शक नहीं, कोतवाली का ओहदा भी एक छोटी-सी बादशाहत है, मगर हुक्काम ज़िला अपने चंगुल में हों, तब। पहले जो साहब थे, उन्हें तो मैंने ख़ूब साँट रक्खा था। शहर के इंतज़ाम का कुल दारमदार साहब ने मुझ पर छोड़ रक्खा था ; जी चाहता था, सो करता था। क्या कहें, साहब हमारे बड़े ख़ूबी के आदमी थे। लोगों ने बहुतेरा मेरे

खिलाफ़ कान भरा, पर उन्होंने एक न सुना। जो यापत मुझे उनके ज़माने में हो गई, वह अब काहे को होना है। नया कलट्टर बड़ा सख्त मिज़ाज का मालूम होता है, आदमी यह बेलौस ज़रूर है, मुझे उम्मीद नहीं होती कि यह किसी तरह चंगुल में आ सकेगा। बेलौस और बड़ा मुंसिफ़-मिज़ाज है; रैयत की भलाई का भी उसे बहुत ख़याल है। ख़ैर, देखा जायगा। कल से एक नया शिकार हाथ आया है, तीन वारेंट गिरफ़्तारी, अदालत से, मेरे पास आए हैं; वारेंट में सेठ हीराचंद के घराने के लोग शामिल हैं। मुक़द्दमा यह ऐसा हाथ आया है कि ख़ूब ही पाकेट गरम होने का मौक़ा मिलेगा, पाँच तोड़े भी हाथ न आए, तो कुछ न हुआ। इधर कई दिनों से बिलकुल ख़ाली जाता था, अल्लाह ने एक साथ भारी रक़म भेज दी। कल रात बी बन्नी कड़कबिजली और झूमड़ के लिये झगड़ रही थीं, यह रक़म गोया उसी के नसीब से हाथ आवेगी। दारोगा सुजानसिंह और नक़ीअली कांस्टेबिल को मैंने इसके लिये तैनात किया है, मालूम नहीं, क्या हुआ। ( पीनक से जग एक फूँक हुक़्क़े की ले )—अबे फ़हमुआ, नामाक़ूल, कैसी तंबाकू भर लाया है, कलेजा तक झुलस गया। अहमक़, तुझसे हज़ार मरतबा कहा गया, तू अपनी आदतों से बाज़ न आएगा। आठ रुपए सेरवाली तंबाकू जो अभी कल मिट्ठू तंबाकूवाला नज़र दे गया, उसे क्या किया, क्यों नहीं भरा ?

फ़हमुआ—साहब, भूल गयउँ हे, भरे लावत हौं।

( नक़ीअली सलाम कर नंदू को सामने हाज़िर कर )

"हुज़ूर, यह तो मिले हैं, बाक़ी दोनों की फ़िक्र में दारोग़ा साहब गए हैं।"

कोतवाल—आहा! आप हैं, कहिए, आप तो बाबू साहब के बड़े दोस्त हैं। ( मन में ) ख़ैर, पहले इसी मूँजी से निपट लें। यह बड़ा बदमाश और चालाक है। अच्छा, आज चंगुल में आया। ( प्रकाश ) आप लोग देखने ही के सुफ़ेदपोश हैं, पर काम जो आप लोगों से बन पड़ता है, वह एक हक़ीर छोटे-से-छोटा आदमी भी न करेगा। उस जाली दस्तावेज़ में आपका भी दस्तख़त है। सच बतलाओ, तुमने किस तरह उस पर दस्तख़त किया। आप तो क़ानून से भी वाक़िफ़ हैं, अदालत की बातों को अच्छी तरह समझते हैं, तब, मालूम होता है, इसमें कुल शरारत आप ही की है।

नंदू—हुज़ूर, जब वह दस्तावेज़ जाली है, तब मेरा दस्तख़त भी जाल से बना लिया गया, तो इसमें अचरज क्या है।

कोतवाल—ख़ैर, तुमने भी एक़रार किया कि दस्तावेज़ जाली है, और यही तो मेरा मतलब है। ( नक़ीअली से ) अच्छा, इसे ले जाओ, पहरे में रक्खो। उन दोनों को भी आ जाने दो, तो जो कुछ कार्रवाई होगी, की जायगी।

---

## उन्नीसवाँ प्रस्ताव

विपदि सहायको बन्धुः ।*

निशा का अवसान है। आकाश में दो-एक चमकीले तारे अव तक जुगजुगा रहे हैं। अरुणोदय की अरुणाई से पूर्व दिशा मानो टेसू के रंग का वस्त्र पहने हुए दिननाथ सूर्य की अगवानी के लिये उद्यत-सी हो अपनी सौत पश्चिम दिशा को ईर्ष्या-कलुषित कर रही है। लोग जागने पर रात के सन्नाटे को हटाते हुए अपने-अपने काम में लगने की तैयारी करते सव ओर कोलाहल-सा मचाए हुए हैं। कोई सवेरे उठ भगवान् के पवित्र नामोच्चारण में प्रवृत्त हैं; कोई शौच कर्म के लिये हाथ में सोंटा और लोटा लिए वहिर्भूमि को जा रहे हैं; कोई दंत-धावन के लिये वृक्ष की डालियाँ तोड़ रहे हैं; कोई अपने छोटे-छोटे बालकों को गुरुजी के यहाँ ले जा रहे हैं; कोई मचलाए हुए लड़कों को फुसला रहे हैं; खेतिहर बैल और हल लिए खेत की ओर जा रहे हैं।

ऐसे समय सुजानसिंह दारोग़ा तीन कांस्टेबिल साथ लिए वाबू की कोठी के द्वार पर यमदूत-से आ विराजे, और यही कोशिश में थे कि ज्यों ही दोनों वावुओं में से कोई भी वाहर निकलें कि उन्हें वारेंट दिखा गिरफ़्तार कर लें।

वावुओं की हवेली के पिछवाड़े खिड़की-सा एक छोटा दरवाज़ा ज़नाने मकान का था। हीराचंद के समय तो बीसों

* जो विपत्ति में सहायता करे, वही बंधु है।

दास-दासी भोर ही से अपने-अपने टहल के काम में लग जाते थे, पर वह तो अब क़िस्सा-किहानी की बात हो गई। पर अब भी मखनिया नाम की पुरानी चाकरानी, जो हीराचंद की स्त्री के बहुत मुँह लगी थी, पुराना घर समझ अब तक टहल के में लगी ही रही। यह मखनिया हीराचंद का समय देख चुकी थी। बाबुओं के जघन्य आचरण पर मन-ही-मन कुढ़ती थी। कोठी के दरवाज़े पर पुलिस को बैठे देख खिड़की को धीरे से खटखटाया। सेठानी निकल आईं, और किवाड़ा खोल इसे भीतर ले गईं। उसे भौचक्की-सी देख कारण पूछा, तो यह कहने लगी—"बहूजी, आज काहे दुआरे पर पुलिस के चपरासी बैठे हैं?" यह सुनते ही सेठानी के हाथ-पाँव फूल गए, घबरा उठीं—"हाय! सब तो गया ही था, अब क्या सेठ के नाम को भी कलंक लगा चाहता है? हाय! कपूत किसी के न जन्में—अच्छा, तो जा चंदू, को बुला ला, तब तक मैं जा उन दोनो बाबुओं को जगाती हूँ, और सावधान किए देती हूँ।"

सेठानी—(मन में) हाय! मुझ निगोड़ी को मौत न आई। सेठ के स्वर्गवास होते ही सोने का घर छार में मिल गया। सच है—"पूत सपूते, तो धन क्या; पूत कपूते, तो धन क्या?" सेठ के समय का राजसी ठाट तो न जानिए कहाँ विलाय गया। किसी तरह अपनी बात बनी रहे, और ज़िंदगी के दिन कटें, इसी को मैं अपना सौभाग्य मानती थी, सो उसमें भी बट्टा लगा। हाय! तिमहले पर दोनो बाबू सो रहे हैं; इतनी सीढ़ियाँ

मुझसे चढ़ी न जायँगी, और यहाँ से पुकारना ठीक नहीं, तो अब क्या करूँ ? अच्छा, चंदू को आने दो।

चंदू भी अचंभे में आया कि आज इतने सवेरे सेठानी ने क्यों बुलाया। बाहर पुलिस का पहरा देख उसी खिड़की से भीतर गया।

चंदू—बहूजी, क्या आज्ञा होती है ?

सेठानी—( रो-रोकर ) चंदू, मैं तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हूँ, एक तुम्हीं तो सहारा हो, नहीं तो चारों ओर से ऐसी भयंकर बयार बह रही है कि कहीं पता न लगता ( कान में कुछ कह )।

चंदू—अच्छा, तो तुम इतनी फ़िक्रि रक्खो कि बाबू बाहर न निकलने पावें ;मैं सब ठीक कर लूँगा।

---

## बीसवाँ प्रस्ताव

बन्धनानि किल सन्ति बहूनि
प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत् ;
दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रि-
र्निष्क्रियो भवति पङ्कजबद्धः ।*

पाठक ! आज अब यहाँ हम प्रेम-पुष्पावली के दो भ्रमरों का कथानक आपको सुनाना चाहते हैं। कुछ लिखने के पहले आपको सावधान किए देते हैं कि हमारे ये दोनों भ्रमर निःस्वार्थ प्रेमी हैं।

---

* यों तो संसार में बहुत प्रकार के बंधन हैं, किंतु प्रेम की डोरी का बंधन कुछ और ही प्रकार का है। देखिए, जो भ्रमर काठ के छेदने में निपुण है, वही प्रेम के वश में हो कमल में बँधकर लाचार हो जाता है।

इन्हें आप उस कोटि के प्रेमी न समझना, जैसा इन दिनों बहुतेरे अपना मतलब साधने के लिये परस्पर प्रेमी बन जाते हैं। ज़रा भी अपने स्वार्थ में चूक हो जाने पर मैत्री क्या, बल्कि साँप और नेवले का सा हाल उन दोनों का हो जाता है। हमारे पाठक पंचानन से परिचित होंगे, जिनको भेंट हम अपने पढ़नेवालों को पहले करा चुके हैं। इस प्रेम के दूसरे भ्रमर का बार-बार नाम संकीर्तन अनुपयुक्त है। बस, समझ रक्खो, इस सौ अजान में यही एक सुजान हैं, जिसे हम प्रेम की फुलवारी का दूसरा भ्रमर कह परिचय देते हैं। पंचानन ठठोल तो था ही, पर इसका ठठोलपन सबके साथ एक-सा नहीं रहता था। किसी तरह के तरद्दुद, फ़िक्र और चिंता से इसे चिढ़ थी। किंतु जब अपने किसी एकांत प्रेमी को तरद्दुद में पड़ा देखता था, तो जहाँ तक बन पड़ता था, आप भी उसे तरद्दुद से बाहर करने को भिड़ी तो जाता। इस समय चंदू को कुछ न सूझा, और कोई बात मन में न आई कि कैसे सेठ के घराने को दुर्गति से बचावें, केवल इतना ही कि पंचानन से मिल उससे इसकी कुछ सलाह करें। इसलिये कि पंचानन अदालती कार्रवाइयों को भरपूर समझता है; वह कोई ऐसी बात निकालेगा, जिससे भरपूर निस्तार हो जाय। यद्यपि इन दोनो की गाढ़ी मैत्री तो थी, पर पंचानन अपनी ठठोल आदत से बाज़ न आ चंदू को 'चकोर' कहता था, और चंदू भी इसे 'चारु चंचरीक' कहा करते थे। आज अपने यहाँ भोर ही को चंदू को आए देख पंचानन बोले—"आज चकोर को दिन

में चकाचौंधी कैसी ? क़ुसूर माफ़, 'अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनम्'।"

चंदू—सच है, अनिष्ट-दर्शन भी इष्ट-दर्शन न हुआ, तो चारु चंचरीक के चिरकाल का प्रेम कैसा ?

पंचानन—आप तो जानते ही हैं कि कुशल-प्रश्न के पूछने में कैसी पेचिश उठा करती है, इससे मैंने यही बेहतर समझा कि इस आदत से बाज़ रहूँ। और, फिर वह प्रेम ही क्या, जब इस प्रेम के बाग़ के माली को प्रेम पुष्प की सुगंधित कली हृदय के आलवाल में खिल परस्पर एक दूसरे को प्रमुदित न कर सकी।

चंदू—सच है, यदि उस आलवाल के चारो ओर कँटीले पौधे न उग आए हों, इसलिये जब तक उन कटीले पौधों को उखाड़ न डालेगा, तब तक उस माली की सराहना ही क्या ?

पंचानन—ख़ैर, आप भी इस दुनियवी पेच में आ फँसे। "बाद मुद्दत के फँसा है यह पुराना चंडूल !" ( हँसता है )

चंदू—मित्र, अब इस समय ठठोलबाज़ी रहने दो, कोई ऐसी बात सोचो, जिसमें सेठ के घराने की पत रह जाय। हम लोग निरे पोथी बाँचनेवाले अदालत की कार्रवाइयाँ और क़ानून के पेचों को क्या समझें। तुम अलबत्ता इसमें परिपक्व-बुद्धि हो। कोई ऐसी बात सोच के निकालो कि इन दोनो बाबुओं का निस्तार हो, नंदू और बुद्धदास को अपने किए का फल मिले।

पंचानन—जी हाँ, बाबुओं ने तो समझा था कि बढ़के हाथ मारा है। रक़म इतनी हाथ लगती है कि कुछ दिन के लिये चैन है। अच्छा, तो मैं अब इस बात की खोज करूँगा कि वह जाली

दस्तावेज़ किस ढंग पर लिखा गया है, और बाबुओं की साज़िश उसमें कहाँ तक है। तो अब इस जून तो आप पधारें, हम इसकी फ़िक्र करेंगे, पर पुलिस के कुत्तों का मुँह मार पिंड छुटवाना वाजिब है।

अस्तु। चंदू ने उन दोनो के बचाने को क्या किया, सो आगे खुलेगा। पंचानन को जी से लग गई कि अपने मित्र चंदू की इच्छा पूरी करें। अब यह सोचने लगा कि क्या उपाय होना चाहिए कि चंदू का मनोरथ भी सिद्ध हो, और उन दोनों बदमाशों को उनके किए का फल मिले। पंचानन चालाकी और क़ानूनी बारीकियों के समझने में किसी से कम न था, बल्कि उस प्रांत के नामी वकील पेचीदह मुक़दमों में बहुधा इसकी राय लिया करते थे। कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि जिस मुक़दमे में इसने जैसी राय दी, वह हाईकोर्ट तक बहाल रही। बड़े-बड़े जालियों को यह बात-की-बात में ऐसा पकड़ लेता था कि उनकी एक भी नहीं चलती थी। पर इन सब गुणों के रहते भी इसे जो सच्चा न्याय और इंसाफ़ होता था, वही पसंद आता था। "साँच को आँच क्या ?" यह पालिसी हमेशा इसे रुचा की। इसलिये इसको यही पसंद आया कि हीराचंद के दोनो वंशधर ख़ुद अदालत में जाय हाज़िर हों, और जो सच हो, सो कह दें। इससे वे दोनो तो ज़रूर ही फँस जायँगे, और बाबुओं के बचाव की कोई सूरत निकल आवेगी। अब रह गया इनका एक़रार कर देना, इस पर बहस और तकरीर की बहुत कुछ गुंजाइश रहेगी। सच पूछो, तो

बड़े-बड़े बैरिस्टर और वकील जो हज़ारों एक दिन की बहस का मुअक्किल से पुजाय बेचारे को उलटे छुरा मूड़ भरपूर अपना मतलब गाँठते हैं, सो इसी तक़रीर और बहस की बदौलत। वाह ! धन्य विधाता ! यह जो प्रचलित है कि 'बात की करामात" सो क्या ही सटीक है। बात में बात पैदा कर देना अँगरेज़ी ही क़ानून हमें सिखाता है। पर तोफ़गी तो यह, जैसी मसल है—"चोर से कहो, चोरी करे; शाह से कहो, जागता रहे।" इसी का नाम है। हमें क्या, हमें तो दिलबहलाव चाहिए, हम मुक़द्मों की पेचीद्गी ही में अपना दिलबहलाव निकाल लेते हैं। पर सच पूछो, तो क़ानून की बारीकियाँ ( litigation ) ही बेईमानी और फ़रेब लोगों को सिखा रही हैं। इसी से मुझे यही इसमें बचाव की सूरत मालूम होती है कि बाबू जो कुछ सच्चा हाल हो, अदालत में जा एक़रार कर दें। क़ानून की मंशा है कि जुर्म करनेवाला क़ुसूरवार नहीं है, बल्कि वह, जो उस जुर्म का उकसानेवाला होता है। ऐसा होने से मुक़द्मे में बहस की कई सूरतें पैदा हो जायँगी। कदाचित् बड़े सेठ के रईस घराने पर रहम कर हाकिम बाबुओं की रिहाई कर दे।

---

## इक्कीसवाँ प्रस्ताव

खल उघरैं ततकाल।

मसल है—"सबेरे का भूला साँझ को आवे, तो उसे भूला न कहना चाहिए।"

दूसरे दिन चंदू बाबुओं के पास गया, और पाला की मारी, मुरझानी कली-सी उनके मुख की छवि पाय चंदू के मन में सेठजी के साथ इसका पुराना सच्चा स्नेह उमड़ आया। बाबू भी इसे देख आँसुओं की धारा बहाने लगे, जिससे मालूम होता था कि अब ये दोनों राह पर आने का पूरा इरादा कर चुके हैं, और जो चूक इनसे बन पड़ी है, उसके लिये भरपूर पछता रहे हैं। चंदू भी अब इन्हें इस समय अधिक लज्जित करना उचित न समझ ढाढ़स बँधाते हुए बोला—"साँझ का भूला सवेरे आवे, तो उसे भूला नहीं कहते। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा ; तुम बड़े बाप के लड़के हो, कभी संभव नहीं था कि सेठ हीराचंद-ऐसे धर्मात्मा और पुण्यशील के वंशधरों का ऐसा हाल हो। तुम दुःसंग में पड़ यहाँ तक अपने को भूलकर अजान बन गए कि अंत को इस दशा को पहुँचे ; अब शोक मत करो, मैं फ़िकिर कर चुका हूँ। ईश्वर ने चाहा और सेठ का सुकृत है, तो तुम्हारा बाल न बाँकेगा, और अदालत से तुम्हारी रिहाई हो जायगी, किंतु जिनके जाल में तुम अब तक फँसे थे, और जिन्होंने चाहा था कि इन नई चिड़ियों को फँसाय कबाब-सा भूँज निगल बैठें, वे ही अपने पातक-अग्नि में भुँजकर कबाब हो जायँगे। तो अब आगे से प्रण करो कि अब अजान न बनें।"

दोनों की इस तरह पर बातचीत हो रही थी कि सड़क से चिल्लाते हुए किसी की आवाज़ सुन पड़ी—"हाय ! मैंने ऐसा नहीं समझा था कि नंदू के कारण मेरी यह दशा होगी।

उस बदमाश नंदू ने अपने भरसक बाबुओं को बेवक़ूफ़ बनाकर फँसाने की कोई बात छोड़ नहीं रक्खी थी। मैं यह ज़रूर कहूँगा कि बाबू-ऐसे रईस ख़ानदानी की यह कभी इच्छा न रही होगी कि वे थोड़े के लिये नियत बिगाड़ें। यह नंदू इस बुराई का जैसा बानीमुबानी रहा, वैसा ही यह सब मुसीबत भी उसी पर आ टूटी। मैं बेक़ुसूर हूँ।" पुलिस के सिपाही—"चुप रह बे, सेत-मेत की टायँ-टायँ कर रहा है। उस वक़्त इन सब बातों का ख़याल क्यों न किया, जब जाल रचने बैठा था। बचा, बहुत दिनों के बाद हम लोगों के चंगुल में आए हो।"

चंदू इन सब बातों को सुन मन-ही-मन प्रसन्न होने लगा, और सोचने लगा कि इसका इस जून का यह चिल्लाना मेरे लिये बहुत फ़ायदे का हुआ। अब मैं जाऊँ, और इसकी ख़बर पंचानन को दूँ।

चंदू—( प्रकाश ) बाबू, तुम बेखटके रहो। ईश्वर ने चाहा, तो तुम्हारी रिहाई हो जायगी।

---

## बाईसवाँ प्रस्ताव

सत्यमेव जयति नानृतम्। *

अंत को यह मुक़द्दमा लखनऊ के चीफ़कोर्ट में पेश किया गया। पंचानन को इसमें चंदू ने गवाह नियत किया। पंचानन को,

---

* सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं।

जो सदा चैन में रहना ही अपने जीवन का उद्देश्य माने हुए था, लखनऊ जाना नागवार हुआ; किंतु चंदू के उद्देश्य से उसे ऐसा करना ही पड़ा। दूसरे यह कि चंदू ने बाबू का कचहरी में जाना अनुचित और सेठ हीराचंद की हतक समझ इसे बाबुओं की ओर से मुख़तार मुक़र्रर किया था।

मुक़दमा शुरू होने पर नंदू बुलाया गया। यह काँपता-काँपता दो पुलिस के पहरे में जज के सामने हाज़िर हुआ। जज ने पूछा—"तुम अपनी सफ़ाई इस मुक़दमे में क्या देते हो ?"

नंदू—हुज़ूर, यह सब पुलिस की कार्रवाई है। मेरा इसमें कोई क़ुसूर नहीं ; और हो भी, तो यह हरकत मैंने बाबू के कहने से की।

पंचानन—नंदू बाबू, तो क्या आप इसमें बिलकुल बेक़ुसूर हैं ? उस दिन वारेंट आपके नाम आया था कि बाबू के नाम ? आप चालाकी से न चूकिएगा। सच है, अंधड़ में जब कोई बड़ा पेड़ उखड़ने लगता है, तो अपने साथ दो-एक छोटे-मोटे वृक्षों को भी ले डालता है, और आपने तो ऐसे-ऐसे कई एक बाबुओं को हलाल कर डाला। पहले आपने कहा—"हम बिलकुल बेक़ुसूर हैं।" पीछे से कहते हो—"किया भी, तो बाबुओं के कहने से।" इससे साफ़ ज़ाहिर है कि आप अपने साथ बाबुओं को भी फँसाना चाहते हैं।

जज—( पुलिस से ) तुम दोनों इसके बारे में क्या जानते हो ?

पहला पुलिस--हुज़ूर, इसने जाल किया है, और हमेशा से यही काम करता रहा है। इसके साथ एक आदमी बनाम बुद्धू और भी है ; वह इसी अदालत में हाज़िर है। ये दोनो आपस में मिले हुए हैं, और यही पेशा इन लोगों का है कि नई उमरवाले रईस के लड़कों को फँसाया करें।

पंचानन—हुज़ूर, यह बिलकुल सही है। आज दिन अवध-भर में हीराचंद जैसे रईस हैं, सब लोग जानते हैं, तब उनके लड़कों को क्या पड़ी, जो इतनी थोड़ी-सी रक़म के लिये ऐसी बेइज़्ज़ती का काम कर गुज़रेंगे। अदालत को जो कुछ दरियाफ़्त करना हो, मैं उनकी तरफ़ से मुख़तार हाज़िर हूँ, पर इतना ज़रूर कहूँगा कि इन दोनो का हमेशा से यही ढंग चला आया है। ये लोग रेउड़ी के लिये मसजिद ढहानेवाले हैं। क्यों नंदू बाबू, सच है न ? ( नंदू सिर नीचा कर लेता है ) हुज़ूर, अब अदालत को कोई शक इसके क़ुसूरवार होने में न रहा, और फिर इन दोनो का तो सदा से यही मक़ूला रहा है कि अँगरेज़ी राज्य में अदालत और क़ानूनों की पेचीदगी इसीलिये है कि जाल रचे जायँ।

जज—अगर तुम्हारा कहना सही है, तो तौहीने-अदालत एक दूसरा क़ुसूर इस पर लगाया जा सकता है। अच्छा, तो इस सबके लिये इसको सात वर्ष की सख़्त सज़ा का हुक्म दिया जाता है, और अदालत मातहत की तजवीज़ देखने से मालूम हुआ है कि कातिब इस जाल का बुद्धदास है। इसलिये उसको दस वर्ष की क़ैद का हुक्म होता है।

---

## तेईसवाँ प्रस्ताव

राजा करे सो न्याव, पाँसा पड़े सो दाँव ।

नंदू का बुरा परिणाम देख इन बाबुओं को कुछ ऐसा भय-सा समा गया कि उसी दिन से इन्हें चेत हो आई । जैसा किसी को दीवानापन सवार हो गया हो, और लगातार किसी अकसीर दवा के सेवन से जब दीवानापन उतर जाय, अथवा सोने से जैसे कोई जाग पड़ा हो, या कोई मादक द्रव्य—भाँग, अफ़ीम, शराब इत्यादि—पीकर मतवाला हो बकता फिरे, मद उतर जाने पर अथवा भूत सवार हो झार-फूँक के उपरांत उतर जाने से होश आने पर अपने किए को पछताता हुआ मुँह छिपाता फिरे, वही हाल इस समय दोनो बाबुओं का था । अब जो इन्हें चेत आई, तो एकांत में बैठे ये घंटों तक आँसू बहाया करते और पछताते । सबसे अधिक पछतावा इन्हें बड़े सेठ साहब की बनी हुई बात के बिगड़ जाने और असंख्य धन के निकल जाने का था । "हाय ! इस बदमाश नंदू ने मुझे अपने जाल में फँसाय मेरी कौन-कौन-सी दुर्गति करा डाली ।" अब इनको ख़याल आया कि जिस बात में अब भी किसी तरह ज़रा भी उस बद-माश का लगाव रह जायगा, उसमें कुशल नहीं । "यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे ।" अपने चचा बुड्ढे मानिकचंद का नंदू को बाबू ने मुख़तार आम कर दिया था । उस मुख़तार-नामे को अदालत से मंसूख़ करा दिया, और नंदू की सलाह मान मानिकचंद का माल-मताल अपने क़ब्ज़े में लाने की जो अभि-

संधि की थी, उससे भी अपने को अलग कर जो कुछ काग़ज़ उस बूढ़े सेठ का नंदू संदूक़ से उड़ा लाया था, और जो कुछ जायदाद थी, सब मिट्ठू को बुलाय सिपुर्द कर चंदू को उसका मुख़तार कर दिया, और ये दोनो बाबू बड़े सेठ हीराचंद के चलाए पथ पर चलने लगे। परिणाम में कुछ दिन उपरांत हीराचंद के घराने की प्रतिष्ठा फिर वैसी ही हो गई। पाठक, देखिए, सौ अजान में एक सुजान कैसा गुनकारी हुआ कि सब अजानों को फिर राह पर अंत को लाया ही, नहीं तो कौन आशा थी कि वे दोनो सेठ के लड़के कभी कुढंग पर आ सुधरेंगे। दूसरे यह कि जो सुकृती हैं, उनके सुकृत का फल अवश्यमेव औलाद पर आता है। हीराचंद-से सुकृती की औलाद दूषित-चरित की हो, यह अचरज था।

अंत को हम अपने पढ़नेवालों को सूचित करते हैं कि आप लोगों में यदि कोई अबोध और अजान हों, तो हमारे इस उपन्यास को पढ़ आशा करते हैं, सुजान बनें। इस क़िस्से के अजानों को सुजान करने को चंदू था, और आप लोगों को हमारा यह उपन्यास होगा।

॥ इति ॥

---

# टिप्पणी-सहित कठिन शब्दार्थ-सूची

—:o:—

सांकेतिक शब्द—( सं० से संस्कृत । अलं० से अलंकार । अ० से अरबी । फ़ा० से फ़ारसी । अँग० से अँगरेज़ी । )

## पहला प्रस्ताव

खोटा—( सं० क्षुद्र ) दुष्ट ।

तातो—( सं० तप्त ) जलता हुआ, गरम ।

दुर्व्यसनी—बुरा शौक़ करनेवाला ; फ़िज़ूल-ख़र्च ; अपव्ययी ।

"दुर्व्यसनी……लगे हैं"—यहाँ पर उपमा अलंकार है ।

"माना प्रकृतिदेवी………चाहती हैं"—इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

प्रेयसी—प्यारी, प्रियतमा ।

"मानो हँस-सा रहे हैं"—उत्प्रेक्षा अलं० ।

"जिसकी सम-विषम……व्याप रही है"—उपमा अलं० ।

सम-विषम भूभाग—ऊबड़-खाबड़ धरती ।

वितान—चँदवा ।

"मानो वितान रूप………दिया गया है"—उत्प्रेक्षा अलं० ।

"मालूम होता है……होड़ लगाए हुए हैं"—उत्प्रेक्षा अलं० ।

होड़—स्पर्धा ।

"मोती-से चमकते……उपहार बन रहे हैं"—समासोक्ति अलं० ।

निशानाथ—( निशा=रात, नाथ=स्वामी ); चंद्रमा ।

निशा-वधूटी—रात्रिरूपी नव ( नई ) वधू ( बहू ) ।

"चाँदनी……धरती"—अपह्नुति अलं० ।

"यहाँ कन्या………प्रस्तुत है"—समासोक्ति अलं० ।

कचलपटी—( सं० कछ-लँपटता )—आवारगी।
छिछोरापन—क्षुद्रता, नीचता।
आय—( पुरानी हिंदी के 'आसना' 'आहना' [होना] क्रिया का पूर्वकालिक रूप ; शुद्ध शब्द 'आहि' है। प्रायः भट्टजी ने पुरानी हिंदी के अनुसार धातुओं का पूर्वकालिक रूप ऐसा ही लिखा है। अन्य स्थानों में भी जैसे "पकड़ाय", "बुलाय" इसी तरह से समझना चाहिए ) आकर।
सोवत हैं—सोते हैं ( प्रयाग के आस-पास की यही भाषा है। )

## दूसरा प्रस्ताव

जलप्राय—जलमय, वह प्रदेश या स्थान, जहाँ जल अधिकता से हो।
हरित - तृण - आच्छादित—हरी-हरी घास से ढँकी हुई।
मरकतमयी-सी—मानो पन्ने (एक प्रकार का हरा मणि ) से जड़ी।
बाँकुरे—बंक, बाँका ( यह शब्द प्रायः वीर शब्द के साथ आता है ; जैसे "वीर बाँकुरे" )
पुण्यतोया—पवित्र जलवाली।
सरिद्वरा—नदियों में श्रेष्ठ।
अनुशीलन—अभ्यास, अध्ययन।
बहुश्रुत—( बहु = बहुत ; श्रुत = सुना हुआ या शास्त्र ) जिसने बहुत सुना हो, अर्थात् विद्वान्, पंडित।
ग्रंथ-चुंबक—( ग्रंथ=पुस्तक, चुंबक=चूमनेवाला ) जो किसी विषय का पूर्ण विद्वान् न हो, वरन् ग्रंथों का केवल पाठ-मात्र कर गया हो; उसके विषय को समझा न हो। अल्पज्ञ।
साक्षर-मात्र—जो थोड़ा भी पढ़ा-लिखा हो।
वृत्ति—दान।
बेदरेग़—बिना सोचे-समझे।
बेजा—अनुचित।

जनखा—( फ़ा०-शब्द ) हिजड़ा ; नपुंसक ।
सुमिरनी—जपने की २७ दानों की माला ।
नितांत—अत्यंत ।
स्फूर्ति—प्रकाश, प्रतिभा ।
नवनता—नम्रता ।

## तीसरा प्रस्ताव

विद्वन्मंडली - मंडनशिरोमणि—विद्वानों के समूह में सर्वश्रेष्ठ ।
दुरूह—कठिन ।
अनुपपन्न—असमर्थ ।
गुज़रान—( फ़ा०-शब्द ) व्यतीत, जीविका-निर्वाहार्थ ।
श्रुताध्ययनसंपन्न—विद्वान् ।
सद्‌वृत्त—अच्छा चरित्रवाला, सदाचारी ।
लिलार—( सं० ललाट ) मस्तक, माथा ।
दामिनी—( सं० दामिनी ) बिजली ।
आर्ष—ऋषियों का बनाया हुआ ।
संथा—पाठ ।
भासती थी—मालूम होता था ।
मनमानस—मनरूपी मानसरोवर ; रूपक अलंकार ।
कायिक—शरीर-संबंधी ।
मानसिक—मन-संबंधी ।
मोतक़िद—क़ायल ।
"शांति और क्षमा....कुसुमाकर"—इसमें रूपक अलंकारों की लड़ी की लड़ी है ।
तृष्णालता गहन वन—लोभरूपी लताओं का घना जंगल ।
अज्ञानतिमिर — मूर्खतारूपी अंधकार ।
सहस्रांशु—( सहस्र=हज़ार ; अंशु=किरण ) हज़ार किरणवाला ; सूर्य ।
दुराग्रह—किसी बात पर मूर्खता के साथ हठ करना ।
क्रूरग्रह—पापग्रह (सितारे); शनिश्चर, राहु, केतु आदि ।
अस्ताचल—( अस्त=डूबना ; छिपना । अचल=जो न चले ; पर्वत या पहाड़ ) पुराने

सिद्धांत के अनुसार जहाँ सूर्य, चंद्रमा आदि ग्रह अस्त (छिप) जाते हैं।

उदयागिरि—वह पर्वत, जहाँ से सूर्य आदि ग्रह उदय होते हैं।

उपशम—शांति।

सौजन्य - सुमन—साधुतारूपी फूल।

कुसुमाकर—वसंत; वाटिका।

रीझ गए—प्रसन्न हो गए।

पट्टशिष्य—मुख्य शिष्य।

अनुहार—समानता।

वाक्पाटव—बोलने म चतुराई।

## चौथा प्रस्ताव

बेइंतिहा—असंख्य।

आकृति—शकल, सूरत।

"मानो······महीने हैं"—यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकारों की एक लड़ी है, जिसमें रूपक अलंकार भी गौण रूप से विद्यमान है।

सुकृत-सागर—पुण्य का समुद्र।

बीजांकुर-न्याय—बीज और अंकुर में जो परस्पर संबंध है, उसी को देखकर इस न्याय की उत्पत्ति हुई है, अर्थात् बीज अंकुर का कारण है, उसी तरह से अंकुर भी बीज का कारण है। यह न्याय ऐसे स्थान पर व्यवहार होता है, जहाँ दो चीज़ों के बीज में कार्य और कारण का संबंध होता है।

अंक—चिह्न, चंद्रमा में कलंक।

सामुद्रिक शास्त्र—ज्योतिष-शास्त्र का एक अंग, जिससे हस्त-रेखा आदि का विचार किया जाता है।

समाय सके—समा सके (इस तरह का रूप भी भट्टजी की हिंदी की ख़ास विशेषता है। इसी तरह से "जाय सके", "ख़ाय सके" इत्यादि।

लल्लोपत्तो—चापलूसी, ख़ुशामद।

खुचुर—(सं० कुचर) व्यर्थ का दोष निकालना।

खुसूसियत—विशेषता।
ख़ार खाते हैं—डाह करते हैं।
अल्हड़पन—अक्खड़पन, बेपरवाही।
दर्पदाह-ज्वर—अभिमानरूपी जलन पैदा करनेवाला ज्वर।
दाह—जलन।
सदुपदेश शीतलोपचार—अच्छे-अच्छे उपदेशरूपी ठंडक पहुँचानेवाले सामान।
कारगर—(फ़ा०-शब्द) उपयोगी, लाभकारक, असर करनेवाली।
मीर शिकार—( अमीर शिकार ) अमीरों का शिकार करनेवाला। जब एक अमीर के लड़के को बिगाड़ चुके, तब दूसरे, फिर तीसरे, इसी तरह अमीरों के लड़कों को बिगाड़कर उनके धन द्वारा जो आप मज़ा लूटते हैं।
खूसट—(सं० कौशिक) उल्लू, मनहूस।
कलामतां—( सं० कलावंत ) किसी फ़न या हुनर में उस्ताद।
दोग़ज़े—( अरबी-शब्द ) वर्णसंकर।

## पाँचवाँ प्रस्ताव

चहले—( सं० किचिल ) कीचड़।
नै बै—(सं० नै=नई; बै (वय)=उमर) नई उमर, जवानी।
दारुण—कठोर।
सुखद—सुख देनेवाला।
ऊष्मा—गर्मी।
कुसुमवान—जिसका बाण कुसुम (फूल) का हो, जिसे पुष्पधन्वा भी कहते हैं, कामदेव।
सलोनापन—लावण्य, लुनाई।
उमंग—इच्छा, जोश, उल्लास।
अनिर्वचनीय—अकथनीय, जिसका वर्णन न हो सके।
दाख—( फ़ा०-शब्द ) अंगूर।
वयस्संधि—लड़कपन और जवानी की उमर के मिलने का समय, नवयौवन।
तरेर—डुबाकर।
अपिच—बल्कि।

तरल-तरंगिणी-तुल्य— चंचल नदी के समान।

तारुण्यकुतर्की — जवानीरूपी दुष्ट बकवादी।

चोखा ( चोक्ष )—शुद्ध और उत्तम।

अज़हद—बहुत अधिक।

तिउरी—निगाह, दृष्टि।

बरहम—क्रोधित।

रब्तज़ब्त—मेलजोल।

तक़रीब—(अ० शब्द) उत्सव, जलसा।

शीशेआलात—( फ़ा०-शब्द ) शीशे के यंत्र —झाड़, फ़ानूस आदि।

## छठा प्रस्ताव

सन्नहटा—नीरव, शब्दाभाव

तिग्मांशु —( तिग्म=तेज़। अंशु=किरण ) सूर्य।

तीखी —( सं० तीक्ष्ण ) तेज़।

खरतर —तेज़।

ब्रह्मांड—जगत्, संसार।

तचा —तप्त।

लोहपिंड—लोहे का गोला।

अनुहार—समानता।

स्थावर —अचल, स्थिर, जो चले नहीं, जैसे पेड़ इत्यादि।

जंगम—चलनेवाला, चरिष्णु, जैसे मनुष्य, पशु इत्यादि।

यावत्—जितने।

त्वगिंद्रिय—स्पर्शेंद्रिय, जिस इंद्रिय से स्पर्श का ज्ञान हो।

शीतस्पर्शवत्यापः — कणाद मुनि ने पाँचो तत्त्वों में से जल-तत्त्व की परिभाषा में लिखा है कि जल वह तत्त्व है, जो छूने में शीतल हो।

दंडायमान—लंबा।

ललाटतप —ललाट (खोपड़ी) को तपानेवाला, अत्यंत गरम, चैलाफाड़ घाम।

चंडांशु—( चंड=तेज़, गरम। अंशु=किरण ) सूर्य।

उच्चाटन —तंत्र के छ अभिचारी या प्रयोगों में से एक। नाश।

रूपगर्विता —अपने सुंदरापे के घमंड में भरी।

जंगरैतिन—परिश्रम करने-वाली, मेहनतिन ।
विक्षेप—खलल ।
कर्कशा—लड़ाकिन, कटु-भाषिणी ।
प्रेमालाप—प्रेम की बातचीत ।
सहिष्णुता—सहन करने की शक्ति ।
सौहार्द—प्रेम ।
अठखेली—( सं० अष्टक्रीड़ा ) मस्तानी या मतवाली चाल ।
अकालजलदोदय — असमय में मेघों का उदय होना ।
कदर्य—नीच, तुच्छ-हृदय ।
घिष्टपिष्ट—गहरा मेलजोल ।
केड़े—(सं० करीर) नया पौधा या अंकुर, नवयुवक ।
गुलछर्रे—आनंद, भोग-विलास ।
निर्गंधोज्झित पुष्प—वह फूल, जो सुगंध न रहने से फेंक दिया गया हो ।
ठौर—( सं० स्थान ) जगह ।
कुलप्रसूत—उत्तम वंश में पैदा हुआ ।
नटखट—धूर्त, कपटी ।
वलीअहद—स्थानापन्न, वारिस ।
उद्घाटन—प्रकट करना, खोल देना ।

## सातवाँ प्रस्ताव

ईशानकोण—पूर्व और उत्तर के बीच की दिशा ।
देवखात—किसी मंदिर के पास का कुंड ।
हलक़ा—घेरा ।
लहलहे—विकसित, हरे-भरे ।
विटप—वृक्ष ।
आतप—घाम ।
ज़ियारत—पूजा ।
परिशिष्ट—बची हुई ।
तीर्थलियों—(सं० तीर्थस्थली) तीर्थ के पुजारी और पंडे ।
फूटा झंझा—फूटी कौड़ी ( यहाँ के दलालों की बोली ) ।
चिरबत्ति—चिथड़ा-चिथड़ा ।
बइयरबानी—कुलीन स्त्री ।
अभिसंधि—षड्यंत्र, चुपचाप कई आदमियों के मिलकर एक कोई खास काम करने की सलाह ।

## आठवाँ प्रस्ताव

धृष्टता—ढिठाई, निर्लज्जता।
अशालीनता—निर्लज्जता ; ढिठाई।
निरंकुश—स्वतंत्र, स्वेच्छाचारी।
हृद्‌गत भाव—वह भाव, जो हृदय के भीतर हो।
हरकसे वाशद—चाहे कोई हो।
आज़ुर्दा—( फ़ा०-शब्द ) खिन्न, दुखी।
बेनज़ीर—अनुपम; वेजोड़; लासानी।
ज़हूड़ा—( अ० ज़हूर ) ठाठ, दृश्य, दिखाव।
मनहूस क़दम—चौपटचरण, जिनका आना अशुभदायक हो।
कुंदेनातराश—जाहिल, मूर्ख।
ब्राह्मी वेला—सूर्योदय के पहले की चार घड़ी।
मंगला आरती—वैष्णव-संप्रदाय में प्रातःकाल की पहली आरती।
पौफट—( सं० प्रस्फुट ) सूर्य का उदय।
"पौफट......छा गई"—रूपक अलंकार।
"वने वने के......गायब होने लगे।"—उत्प्रेक्षा अलंकार।
कालकैवर्त्त—कालरूपी मल्लाह।
"कालकैवर्त्त.........समेट लिया।"—रूपक अलकार।
"सूर्य लक्का कबूतर...चुग गया"—उपमा अलंकार।
रक्तोत्पल-सदृश—लाल कमल के समान।
वासर श्री—दिन की शोभा।
"प्रातः-संध्या.........इकट्ठा कर रही है"—समासोक्ति अलंकार।
प्रभाकर—सूर्य।
"अपने विजयी...हो गया" उत्प्रेक्षा अलंकार।
शनैः-शनैः—धीरे-धीरे।
उदयाचलवाल मंदार—

उदयाचल पर्वत पर उगा हुआ छोटा मंदार नामी स्वर्गीय वृक्ष ।
पूर्वदिगंगना—पूर्व दिशारूपी अंगना ( स्त्री ) ।
श्रोत्रिय—वेदज्ञ, वेदपाठी ब्राह्मण ।
खुमारी—नशा ।
फ़ारिग़—छुट्टी ।
ख़ैरख़्वाही—भलाई चाहना ।
नुमाइश—बनावट ।
गुंजायश—स्थान, जगह, समाई ।
पैरा—( पैग ) आगमन, आना ।
परख—( सं० परीक्षा ) जाँच ।
तीर्थोदक—तीर्थ जैसे गंगा, यमुना का जल ।
ओछा—( सं० तुच्छ । प्राकृत उच्छ) क्षुद्र, छिछोरा ।
टुच्चा—( स० तुच्छ ) नीच, कमीना, छिछोरा ।
तिहीदस्ती—तंग हाथ, ग़रीबी ।
तरहदारी—शौक़ीनी ।
नफ़ीस—उम्दा ।

## नवाँ प्रस्ताव

सरहंग—धृत, प्रगल्भ, बाग़ी ।
दाँता-किटकिट—लड़ाई झगड़ा ।

## दसवाँ प्रस्ताव

ग़ैरत—लज्जा ।
शिष्टता—भलमनसाहत ।
पस्तक़द—नाटा ।
परिचारक—सेवक ; भृत्य ।
जघन्य—नीच ।
तरहदारी—सजधज का ढंग ।
हमशीरा—बहन ।
तस्बी—मुसलमानी माला ।
ज़प्त किए था—चुप था ।
रुख़सत—विदा ।

## ग्यारहवाँ प्रस्ताव

वसीह—लंबा-चौड़ा ।
आरास्ता—( फ़ा०-शब्द ) सजा हुआ, सुसज्जित ।
ड्राइंगरूम—( अँग०-शब्द ) सजने या कपड़ा पहनने का कमरा, दर्शनगृह, लोगों

से मिलने - जुलने का कमरा।

हुस्नपरस्त—सौंदर्योपासक।

वयक्रम—उम्र।

संजीदगी—गांभीर्य।

शऊर—सलीक़ा।

अलकावली—छल्लेदार बाल।

विकसित-पुंडरीक-नेत्र—खिले हुए कमल-समान नेत्र।

"यह अपने......कर रही थी"—उपमा अलं०।

कोकिलकंठी—कोयल के समान शब्दावली।

मुश्ताक़—इच्छुक।

## बारहवाँ प्रस्ताव

नेचरिये—(अँ० Nature) नास्तिक, जो ईश्वर को न मानकर केवल प्रकृति या नेचर ही को संसार का कर्ता-धर्ता मानते हैं।

हाफ़कास्ट—(अँ०-शब्द) केरानी, यूरेशियन, दोग़ले।

कुम्मेद—(तुर्की कुमैत) वह घोड़ा, जिसका रंग स्याही लिए लाल हो। इस रंग का घोड़ा बहुत मज़बूत और तेज़ होता है।

आठो गाँठ कुम्मैद—अत्यंत चतुर, छटा हुआ, चालाक, धूर्त।

सरिश्ते—विभाग।

तंदीही—सख्ती, सज़ा।

बर्क—चतुर, चमकीला।

बेलौस—पक्षपात-रहित।

तर्रार—चालाक।

लियाक़त में खाम—बुद्धि में कमी।

दामनगीर—सलग्न।

तुहफ़—नजर, भेंट, सौग़ात।

गौं—(सं० गम्य) घात, दाँव, मतलब।

गुर्गा—(सं० गुरुग) गुरु का अनुगामी, जासूस, दूत।

मरदूद—जड़ बुद्धि; मूर्ख।

उपासनाकांड—आराधना, पूजा।

दारमदार—निर्भर।

गुट्ट—(सं० गोष्ठी) समूह, झुंड, दल।

केंडिडेट—(अँ०-शब्द) उम्मेदवार।
फ़रमाइशें—आदेश, माँग।
मुहैया—उपस्थित करना।
सिफ़तें—गुण।
मुहताज—दरिद्र, निष्किंचन।
ज़ेहनशीन—(फ़ा०-शब्द) दिल में बैठ जाना।
ताड़बाज़—भाँपनेवाला।
असरैत—आसरे या भरोसे पर रहनेवाले, सहारा पानेवाले, नौकर-चाकर।
गदहपचीसी—प्रायः १६ से २५ वर्ष तक की अवस्था। जिसमें लोगों का विश्वास है कि मनुष्य अनुभव-हीन रहता है, और उसकी बुद्धि अपरिपक्क रहती है।

## तेरहवाँ प्रस्ताव

फ़ितनाअंगेज़ी—(फ़ा०-शब्द) दुष्टता।
सकलगुणवरिष्ठ—सब गुणों में श्रेष्ठ।
श्रावक—जन गृहस्थ, सरावगी।
थाती—धरोहर, अमानत।
कीमियागर—(फ़ा०-शब्द) रसायन बनानेवाला।
ख़ुशनवीसी—सुंदर अक्षर लिखने की कला।
उजरत—मेहनताना।
समानसख्यम्—समान शील स्वभाव के तथा समान दुख में पड़े हुए लोगों में मैत्री होती है।
घात—दाँव।
अभिप्राय—मतलब।

## चौदहवाँ प्रस्ताव

ताबड़तोड़—लगातार, बराबर, शीघ्र।
अवतरी—घटाव, बिगाड़, अवनति, बुराई।
यक्षवित्त—कुबेर के समान धनवाला।
पलित—जर्जर, शिथिल।
चोली-दामन का साथ—बहुत अधिक साथ या घनिष्ठता।
इश्तियालक—उत्तेजना।
बेख़रख़शे—बेखटके।
देहक़ानी—ग्रामीण।

## पंद्रहवाँ प्रस्ताव

ऊँटकटारा—( सं० उष्ट्रकंट ) एक कटीली झाड़ी; जिसे ऊँट बड़े चाव से खाता है।

नीचैर्गच्छति······चक्रनेमि-क्रमेण—मनुष्य की दशा पहिए के चाके के समान कभी ऊपर कभी नीचे को जाती है, अर्थात् कभी अच्छी दशा होती है, और कभी खराब।

ग्रीष्म-संताप-तापित—गर्मी की ताप से जली हुई।

वसुधा—पृथ्वी।

नववारिद—नए बादल।

वन-उपवन—बाग़-बग़ीचे।

वदान्य—उदार।

कथानक—उपन्यास, क़िस्सा।

"नदी-नाले···बह निकले"—उपमा अलं०।

कलध्वनि—मीठा शब्द।

"विमल-जल······लायक़ हुए"—उपमा अलं०।

"सूर्य-चंद्रमा······पुजवाने लगे"—उपमा अलं०।

घुणाक्षर-न्याय—ऐसी कृति या रचना, जो अनजान में उसी प्रकार हो जाय, जिस प्रकार घुनों के खाते-खाते लकड़ी में अक्षरों की तरह बहुत-से चिह्न या लकीरें बन जाती हैं। इस न्याय का प्रयोग ऐसे स्थलों पर करते हैं, जहाँ किसी के द्वारा ऐसा आकस्मिक कार्य हो जाता है, जो उसे ज्ञात व अभीष्ट न रहा हो।

"दिन में····हो जाता है"—उपमा अलं०।

सम-विषम-भाव—ऊबड़-खाबड़ स्वरूप या दशा।

तत्त्वदर्शी—ब्रह्म का जाननेवाला ब्रह्मज्ञानी।

"पृथ्वी पर·········जाता ही रहा"—उपमा अलं०।

शग़ल—काम।

नववारिद-समागम—नए बादल का आगमन।

भेकमंडली—मेंढकों का समूह।

वाचाट—मुखर, बकवादी, गपोड़िया।

पखेरुओं—पक्षियों।
जशन—(फ़ा०-शब्द) जलसा।
क़ज़्ज़ाक—(तुर्की शब्द) डाकू, लुटेरा, चालाक।

## सोलहवाँ प्रस्ताव

पैग़ंबर—अवतार, ईश्वर-दूत।
गुनहगार—पापी।

## सत्रहवाँ प्रस्ताव

चंपत हुआ—ग़ायब हुआ।
छनक—भड़क।
हैरतअंगेज़—भय-जनक।
साज़नादिर—कभी को या कभी-कभी।
डामिल—(अ-दायमुल्हब्स) जन्म क़ैद।
फ़रोग़—उन्नति, वृद्धि।
तकमीला—पूर्णता।

## अठारहवाँ प्रस्ताव

सुर्ख़रुई—प्रशंसा।
हमनिवाले—सहभोजी।
हक़ीर—(फ़ा०-शब्द) तुच्छ।

## उन्नीसवाँ प्रस्ताव

अवसान—अंत, ओर।
ईर्षा-कलुषित—डाह से काली।
वहिभूमि—बाहर की ओर; बाहिरी ओर।
भौचक्की—घबराई हुई।

## बीसवाँ प्रस्ताव

निस्स्वार्थ—विना मतलब के।
नामसंकीर्तन—नामोल्लेख।
चारुचंचरीक—भ्रमर, भँवरा।
अद्यप्रातरेवानिष्टदर्शनम्—आज सबेरे ही अशुभ दर्शन हुआ।
आलवाल—थावला।
तौफ़गी—उम्दगी।

## इक्कीसवाँ प्रस्ताव

बानीमुबानी—जड़ जमान-वाला।

तौहीन—अपमान।

## बाईसवाँ प्रस्ताव

तजवीज़—(फ़ा०-शब्द) राय, फ़ैसला।

कातिब—(अ० शब्द) लेखक।

## तेईसवाँ प्रस्ताव

यत्रास्ते······तदपि मृत्यवे—जिस अमृत में विष की कुछ भी मिलावट है, उससे भी मृत्यु ही होती है।

# हिंदी-साहित्य के दो अनमोल ग्रंथ

अनुसंधान के विद्यार्थियों के लिये

साहित्य-मनीषी मिश्रबंधुओं की अपूर्व देन !

## *हिंदी-नवरत्न* [ *संपूर्ण* ]

हिंदी की विभिन्न काव्य-धाराओं के प्रवर्तक, प्राचीन युग के नौ महाकवियों—तुलसी, सूर, कबीर, देव, बिहारी, भूषण, मतिराम, केशव, चंद और भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र—का जीवन-दर्शन तथा उनकी रचनाओं की सुविस्तृत व्याख्या।

हिंदी में ऐसा प्रामाणिक ग्रंथ अभी तक दूसरा नहीं निकला। साहित्य-प्रेमियों तथा साहित्य-जिज्ञासुओं के निरंतर अनुरोध पर यह बृहत्, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण हमने नई सज-धज के साथ निकाला है। मूल्य १२)

## *मिश्रबंधु-विनोद*

[ नवीन, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण ]

हिंदी-साहित्य का सबसे प्रथम एवं प्रामाणिक इतिहास।

हिंदी के आदि काल से लेकर द्विवेदी-युग तक के समस्त कवियों, समालोचकों, कहानीकारों, उपन्यासकारों, निबंधकारों

और पत्रकारों का संक्षिप्त जीवन-दर्शन तथा उनकी रचनाओं का सार-गर्भित, निष्पक्ष आलोचनात्मक परिचय इस ग्रंथ-रत्न में कराया गया है। छोटे-से-छोटा तथा बड़े-से-बड़ा कोई भी साहित्यकार मिश्रबंधुओं की पैनी दृष्टि से छूटा नहीं, यही इसकी विशेषता है। प्रसिद्ध आलोचक पं० रामचंद्र शुक्ल-जैसे साहित्य के इतिहासकारों ने भी इसी के आधार पर अपने इतिहास की रचना की। सुंदर छपाई और बढ़िया गेट-अप। मूल्य तीनों भागों का १८)

# भारती( भाषा )-बाल-लाइब्रेरी-योजना

( १ ) बालक-बालिकाएँ देश के जीवन की रीढ़ की हड्डी हैं। उनकी उन्नति पर ही देश का भविष्य निर्भर है। इसलिये प्रत्येक शहर, नगर, डगर और घर में उनके लिये पुस्तकें होनी चाहिए।

( २ ) किसी भी प्रकाशक ने इतना विराट् बालोपयोगी साहित्य नहीं निकाला, जितना हमने—बड़े-बड़े लेखकों का लिखा साहित्य।

( ३ ) अपने नगर या क़स्बे के हर मुहल्ले में लाइब्रेरी खोलिए।

( ४ ) उसका नाम 'भारती( भाषा )-बाल-लाइब्रेरी' रखिए। नीचे मुहल्ले और स्थान का नाम दीजिए।

( ५ ) भारत में १५० भारती(भाषा)-भाषी ज़िले हैं—ऐसे ज़िले, जहाँ हिंदी बोली और लिखी जाती है। इन सबमें, मुहल्लेवार, बाल-लाइब्रेरियाँ खुलवाइए। १००) आप जमा कर लें। १००) हम लगा देंगे। २००) में बहुत-सी किताबें हो जायँगी। १००) हमें भेज दें। हम २००) की पुस्तकें चुनकर भेज देंगे। ये केंद्रीय लाइ-ब्रेरियाँ होंगी। मुहल्ले-भर के बालक इनका उपयोग करेंगे। प्रति १००० घर पर १ लाइब्रेरी होनी चाहिए। हर घर से ।) मासिक चंदा लें। १) प्रवेश-फ़ीस। इस तरह २५०) महीने की आय होगी, म्युनि-सिपैलिटी और सरकार से भी सहायता मिलेगी, और कोई १०,००० केंद्रीय लाइब्रेरियाँ खुल जायँगी।

( ६ ) बाक़ी ६०,००० घरेलू पुस्तकालय अपने-अपने घर में खोलिए। जो भी बालक साल-भर में १०) ख़र्च कर सकें, अपने घर में अपने नाम से लाइब्रेरी खोल लें। उन्हें भी हम १०) की पुस्तकें ७।।) में दे देंगे।

( ७ ) प्रत्येक ८ से २० वर्ष के बालक का कर्तव्य है, अपने मुहल्ले में लाइब्रेरी खुलवाने में हमारी मदद करे। हमसे योजना मँगा ले। समर्थ हों, तो अपना घर आप पुस्तकों के प्रकाश से प्रकाशित करें।

गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ } दुलारेलाल